मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 128 • वर्ष 14, अंक 4 • जून 2024 • दस रुपये • 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

योगी सरकार के बुलडोज़री न्याय का एक और काला अध्याय 4

फ़िलिस्तीनी अवाम के मुक्तिस्वप्न को डिगा नहीं पाये हैं ज़ायनवादी हत्यारे! 6

खाड़ी देशों में प्रवासी मज़दूरों के नारकीय हालात से उपजा एक और हादसा 5

मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए लोकसभा चुनाव 2024 के नतीजों के मायने

भावी सम्भावनाएँ, भावी चुनौतियाँ और हमारे कार्यभार

बीते 4 जून को लोकसभा चुनाव के नतीजे आ गये। कुछ दिनों की राजनीतिक अनिश्चितता के बाद केन्द्र में फ़िलहाल भाजपा-नीत राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक गठबन्धन (एनडीए) की सरकार बन गयी है। नीतीश कुमार की जद (यू) और चन्द्रबाबू नायडू की तेलुगु देशम पार्टी के समर्थन के बूते फ़िलहाल नरेन्द्र मोदी का तीसरी बार प्रधानमन्त्री बनने का सपना, मनमुआफ़िक तरीक़े से न सही, आख़िरकार पूरा हो ही गया। हालाँकि राज्यसत्ता की मशीनरी का अभूतपूर्व तरीक़े से दुरुपयोग करने, समस्त पूँजीवादी संसदीय विपक्ष को कुचलने के तमाम प्रयासों, पूँजीपति वर्ग के अकूत धनबल और जनपक्षधर शक्तियों के व्यापक दमन-उत्पीड़न के बावजूद फ़ासीवादी भाजपा अपने बूते बहुमत तक पहुँचने में नाकाम रही। चुनावी नतीजों की घोषणा के फ़ौरन बाद भाजपा के चुनावी प्रदर्शन को लेकर पूरे देश में फ़ासीवाद-विरोधी ताक़तें और विशेषकर उसका उदारपन्थी तबका हर्षातिरेक की अवस्था को प्राप्त हो गया था। ज़ाहिरा तौर पर **मोदी-शाह की फ़ासीवादी जोड़ी का अपने बूते बहुमत न पाना जनता की ताक़तों के लिए एक हद तक ख़ुशी की बात है लेकिन इन नतीजों को लेकर फ़ासीवाद की शक्तिमत्ता या ख़तरे के विषय में किसी भी प्रकार का मुग़ालता पालना आने वाले दिनों की तैयारियों के लिए काफ़ी नुकसानदेह साबित हो सकता है।**

सम्पादकीय अग्रलेख

ऐसे में इस देश के मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश जनता के लिए इन चुनावी नतीजों के क्या मायने हैं? इन नतीजों के साथ तात्कालिक अर्थों में कौन-सी सम्भावनाएँ पैदा होती हैं? मज़दूर वर्ग के समक्ष कौन-सी भावी चुनौतियाँ है? इन सम्भावनाओं और चुनौतियों से तात्कालिक और दूरगामी तौर पर कौन-से कार्यभार निकलते हैं? इन सभी आवश्यक बिन्दुओं पर हम आगे चर्चा करेंगे।

चुनाव के नतीजों की सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही कि फ़ासीवादी भाजपा व मोदी-शाह जोड़ी अपने बूते पर बहुमत तक नहीं पहुँच पाये। 2019 के आम चुनावों के मुक़ाबले 63 सीटों की कमी के साथ भाजपा 240 सीटों तक ही पहुँच सकी। 'अबकी बार 400 पार' के भाजपाई जुमले की भी हवा निकल गयी। और यह आँकड़ा भी भाजपा तब छू पायी जब उसके नियन्त्रण में समस्त पूँजीवादी राज्यसत्ता की मशीनरी थी। पूँजीवादी विपक्ष को तोड़ने, पंगु बनाने और कुचलने के तमाम प्रयासों, चुनावों के पहले मोदी, शाह, योगी समेत तमाम भाजपा नेताओं द्वारा खुले तौर पर आचार संहिता की धज्जियाँ उड़ाते हुए किये गये साम्प्रदायिक व दंगाई प्रचार, ईवीएम मशीनों द्वारा किये गये हेर-फेर, मतगणना के दिन तमाम इलाक़ों में सरकारी मशीनरी का इस्तेमाल कर नतीजों में की गयी गड़बड़ी (जिसकी खबरें अभी तक आ रही हैं) के बावजूद यदि भाजपा 272 का आँकड़ा पार नहीं कर पायी तो आप ख़ुद-ब-ख़ुद अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि अगर ऊपर बताये गये सभी कारकों को हटा दें तो भाजपा के लिए 200 सीटों तक पहुँचना भी कितना मुश्किल होता। बेशक़ यह एक सुखद बात है।

यदि चुनाव से पहले के घटनाक्रम पर एक सरसरी निगाह दौड़ायें तो हम पाते हैं कि किसी भी तरह से इन चुनावों को पूँजीवादी औपचारिक मानकों से भी बराबरी के मैदान पर हुआ चुनाव नहीं माना जा सकता। ईवीएम के ज़रिये चुनाव सम्पन्न करवाना ही स्वयं एक

(पेज 8 पर जारी)

लोकसभा चुनाव : बहुमत से पीछे रहने के बावजूद फ़ासीवादी भाजपा के दाँत, नख और पंजे राज्यसत्ता में और अन्दर तक धँसे

• अविनाश

लोकसभा चुनाव के नतीजे सामने आ चुके हैं। भाजपा भले ही अपने "400 पार" के नारे के बोझ तले धड़ाम से गिर चुकी हो, मगर जिस तरह पूरे चुनाव में गोदी मीडिया, ईडी, सीबीआई, चुनाव आयोग समेत पूँजीवादी राज्यसत्ता की समस्त मशीनरी ने भाजपा के पक्ष में सम्भावनाएँ पैदा करने का काम किया है, यह भाजपा-आरएसएस द्वारा राज्यसत्ता की मशीनरी में अन्दर तक की गयी घुसपैठ और उसके भीतर से किये गये 'टेक ओवर' के बारे में काफी कुछ बता देता है। इसके बावजूद एक तबका चुनाव के नतीजों के बाद भाजपा के 240 सीट पर सिमट जाने से ख़ुशी की लहर पर सवार है और वह "लोकतंत्र की जीत" व "संविधान की मज़बूती" की दुहाई देते थक नहीं रहा है। ऐसे में "लोकतंत्र के त्यौहार" यानी 18वें लोकसभा चुनाव (जिसका कुल ख़र्च लगभग 1.35 ट्रिलियन रुपये बताया जा रहा है) को समग्रता में देखने की ज़रूरत है, ताकि चुनाव नतीजों के शोर में व्यवस्थित तरीक़े से, पूँजीवादी औपचारिक मानकों से भी, लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के हो रहे विघटन से दृष्टि ओझल न हो।

1. चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति

आम चुनाव की घोषणा से कुछ ही दिन पहले चुनाव आयुक्त अरुण गोयल ने इस्तीफ़ा दे दिया था। वहीं इसके पहले अशोक लवासा ने, जिन्हें 2018 में चुनाव आयोग में नियुक्त किया गया था, 2019 के चुनाव में पीएम मोदी और अमित शाह द्वारा प्रचार नियमों के कथित उल्लंघन के मुद्दे पर कई असहमतियाँ दर्ज करवायी थीं, जिसके बाद उन्होंने अगस्त 2020 में इस्तीफ़ा दे दिया था। अगर यह इस्तीफ़ा नहीं देते तो मुख्य चुनाव आयुक्त का पद संभाल सकते थे।

ऐसे में जब चुनाव आयोग में चुनाव आयुक्त के पद ख़ाली पड़े थे, तब मोदी-अमित शाह के इशारों पर इनकी नियुक्ति हो इसके लिए चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति के नियमों में परिवर्तन किया गया। इन बदलावों के तहत नियुक्ति करने वाले निकाय में तीन लोगों का प्रावधान किया गया: प्रधानमन्त्री, केन्द्रीय गृहमन्त्री और प्रमुख विपक्षी दल के नेता। ऐसे में बहुमत हमेशा सरकार के पक्ष में ही होगा और ऐसे में चुनाव आयुक्त वही

(पेज 11 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

दिल्ली में सीवर लाइन बनाने वाले मज़दूरों के हालात

– एक मज़दूर की चिट्ठी

साथियो, जहाँ एक ओर इस वर्ष तापमान लगातार 50 डिग्री के पार जा रहा है, घास से लेकर पेड़ तक सब सूख रहे हैं, गर्मी में बाहर कुछ समय तक भी खड़ा होना मुश्किल है, वहीं दूसरी ओर यह अमानवीय पूँजीवादी व्यवस्था मज़दूरों का शोषण करके मुनाफ़ा कमाने में कोई कसर नहीं छोड़ रही है।

अभी लगभग पूरी उत्तरी-पश्चिमी दिल्ली के तमाम रिहायशी इलाक़ों में सीवर लाइन बिछाने का काम युद्ध स्तर पर चल रहा है। हर तरफ, छोटी गली से लेकर बड़ी सड़क तक, सब अनियोजित तरीक़े से खोदे जा रहे है। ऐसा इसलिए है ताकि कहने को ही सही, लेकिन दिल्ली को कम से कम "स्मार्ट सिटी" का तमगा तो दिया जा सके। परन्तु ये सब मज़दूरों की मेहनत से ही हो रहा है।

इन मज़दूरों से बात करके व थोड़ी जाँच-पड़ताल के बाद यह पता चला कि सीवर लाइन बिछाने वाली कम्पनी और कॉण्ट्रेक्टर दोनों गुजरात के हैं और सभी मज़दूरों को भी ठेके पर गुजरात से ही लाया गया है। इन्हें 1 मीटर लम्बाई और 1 मीटर गहराई का गड्ढा खोदने के 120 रुपये मिलते हैं। एक मज़दूर अधिकतम दिनभर में 5-6 मीटर ही गड्ढा खोद पाता है जिसके लिए उन्हें सुबह 6 बजे से लगातार रात 8 बजे तक खुदाई करनी पड़ती है। यानी औसतन 5 मीटर गड्ढे खोदने पर उनकी 600 रुपये की दिहाड़ी बनती है जिसके लिए उन्हें 14 घण्टे काम करना पड़ता है। इन मज़दूरों लिए छुट्टी का कोई मतलब नहीं है, कई बार पूरी रात भी ओवरटाइम लगाना पड़ता है। बरसात होने या किसी भी अन्य स्थिति में काम न होने पर इन्हें कुछ नहीं मिलता है क्योंकि इनका ठेका तो 120 रुपये प्रति मीटर की खुदाई का है। इस 45-50 डिग्री सेल्सियस की गर्मी में कम्पनी, काण्ट्रेक्टर या ठेकेदार की तरफ़ से लोगों के लिए पीने के पानी तक का इन्तज़ाम भी नहीं किया जाता है। ये मज़दूर साधारण प्याऊ या जनता के बीच से ही पीने के पानी का इन्तज़ाम करते हैं।

एक मज़दूर नीलेश ने बताया कि वे सभी लोग दाहोद (गुजरात) से हैं। यहाँ खाटू श्याम धाम दिल्ली के पीछे के जंगल में उन्होंने अपनी अस्थायी झोपड़ियाँ डाली हैं। जन सुविधा के नाम पर 3 अस्थायी शौचालय बनाये गये हैं, जिनका कोई ख़ास मतलब नहीं है। आमतौर पर वे सभी मज़दूर (महिलाएँ भी) जंगलों में ही शौच के लिए जाते हैं। नीलेश भाई से जब पूछा गया कि गुजरात के बारे में देश भर में यही प्रचार होता है कि वहाँ तो कोई ग़रीब ही नहीं है, तो उन्होंने पसीना पोंछते हुए मुस्कुराकर जवाब दिया, "सब झूठ बोलता है।"

उनके सुपरवाइज़र से जब बात की तो उसने बोला कि वहाँ प्रत्येक मज़दूर की तनख़्वाह 35-40 हज़ार रुपयों तक है, लेकिन ये लोग खाने और दारू पीने पर सारे पैसे उड़ा देते हैं। लेकिन जब काम के घण्टे, मज़दूरों को मिलने वाली मज़दूरी, तथा काम न हो पाने की सूरत में उनकी स्थिति, जैसे तमाम मसलों पर बात की गयी तो वह बगले झाँकने लगा। उसने बोला कॉण्ट्रेक्टर इन सबको 1-2 लाख रुपये प्रति परिवार के हिसाब से एडवांस देकर लाता है। वह बोला इन्हें पहले ही ख़रीद लिया जाता है। बाद में उसने ईमानदारी से सच्चाई को स्वीकार किया और कहा कि ये सही मायने में बन्धुआ मज़दूर ही हैं। उन्हें बस जीनेभर के पैसे मिलते हैं, ताकि ये सब अपनी मेहनत से सुपरवाइज़र, ठेकेदार, कॉण्ट्रेक्टर, कम्पनी, नौकरशाही और सरकार को पालते रहें और देश विकास करता रहे!

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है। आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं : www.facebook.com/MazdoorBigul

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

दिल्ली में 'तू नंगा-तू नंगा' के खेल के बीच पिसती मेहनतकश जनता

आज़ादी के 76 साल के बाद भी राजधानी के मेहनतकश पानी तक के लिए मोहताज

अदिति

दिल्ली में बीते कुछ सालों से जैसे ही गर्मी शुरू होती है वैसे ही जल संकट की गम्भीर समस्या भी शुरू हो जाती है। इसी दिल्ली में केजरीवाल सरकार 700 लीटर मुफ़्त पानी देने का वायदा करके सत्ता में आयी थी। लेकिन दिल्ली में जल संकट के पैमाने का अन्दाज़ा आप इसी बात से लगा सकते हैं कि इलाक़ों में पानी के टैंकर के इन्तज़ार में भोर से कतार लग जाती है और इनके आते ही कुछ जगहों पर तो महज़ 10-15 मिनट में टैंकर खाली हो जाते हैं। जल संकट की यह स्थिति राजधानी के दक्षिणी क्षेत्र से लेकर पूर्वी क्षेत्र तक मिल जायेगी। एक तरफ़ एक टैंकर 10 मिनट में खाली हो जा रहे हैं, दूसरी तरफ़ एक दशक से दिल्ली सरकार इस मसले पर ज़ुबानी जमाख़र्च के सिवाय कोई ठोस क़दम तक नहीं उठा पायी है। इस समस्या के लिए कोई नयी योजना लेना तो दूर की बात है, उल्टे इस संकट का विस्तारीकरण ज़रूर हुआ है। यमुना किनारे तालाब बनाने की योजना सिर्फ़ गड्ढों को खोदकर पूरी कर दी गयी! इसी तरह वॉटर ट्रीटमेण्ट प्लाण्टों में जमी गाद की इतनी मोटी परत हो गयी कि पानी भी शिथिल पड़ गया है। इतना ही नहीं जल संकट का एक और सबसे बड़ा कारण यह है कि जनता के हिस्से के पीने का 52% पानी या तो चोरी हो रहा है या फिर बर्बाद हो रहा है।

दिल्ली में मुख्यतः तीन वॉटर ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट हैं : वज़ीराबाद, चन्द्रावल और ओखला। ये तीनों वॉटर ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट दिल्ली जल बोर्ड के अधीन संचालित हैं। इन वॉटर ट्रीटमेण्ट प्लाण्टों द्वारा यमुना से पानी लेकर उसे साफ़ करके आगे सप्लाई किया जाता था। हाल में ही यह सूचना आयी कि पानी में गाद, पत्ते व अन्य कचरा आ रहा था, जिसके कारण प्लाण्ट्स की मशीन काम नहीं कर रही थी। हालाँकि तकनोलॉजी इस समस्या का भी समाधान कर सकती है, लेकिन जब समस्या जनता की हो, तो समस्याओं के समाधान में पूँजीपतियों की नुमाइन्दगी करने वाली सरकारों की कोई दिलचस्पी क्यों होगी?

2013 से गाद निकालने के काम का ठेका दिये जाने के बावजूद, गाद नहीं निकाली गयी, जिसके परिणामस्वरूप पिछले दस वर्षों के दौरान तालाब की गहराई 4.26 मीटर से घटकर मात्र 0.42 मीटर रह गयी है। सितम्बर 2014 में नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल के एक स्थगन आदेश के कारण गाद निकालने का काम रोक दिया गया था और 2015 में स्थगन हटाये जाने के बाद इसे फिर से शुरू किया गया था। यहाँ यह रेखांकित करने की ज़रूरत है कि 2013 से 2014 के बीच लगभग नौ महीनों में पाँच लाख क्यूबिक मीटर गाद हटायी गयी थी।

कथनी नहीं करनी से दूर होगा जल संकट

दिल्ली जल बोर्ड 1000 एमजीडी पेयजल उपलब्ध कराने का दावा करता है। इसमें से लगभग 52 प्रतिशत या तो चोरी हो जाता है या बर्बाद हो जाता है। कई स्थानों पर पाइपलाइन टूटी हुई हैं जिससे पानी और भी बर्बाद होता है।

गर्मी के दिनों में ज़ाहिरा तौर पर पानी की खपत बढ़ जाती है। पानी की बढ़ी हुई माँग पूरी करने के लिए ठोस तैयारी नहीं होती है। इसका परिणाम है कि दिल्ली में, ख़ासकर मज़दूर इलाक़ों में, पानी की क़िल्लत हो रही है। अब समस्या यह है कि वर्तमान सरकार इस पर राजनीति तो ख़ूब कर रही है, लेकिन पानी की उपलब्धता बढ़ाने की ओर कोई ठोस क़दम नहीं उठा रही है।

अदालत के निर्देश पर हरियाणा ने वर्ष 2014 में मुनक नहर के माध्यम से दिल्ली को उसके हिस्से का पूरा पानी देना शुरू किया था। इससे द्वारका, बवाना व ओखला के तीन जल उपचार संयन्त्र (डब्ल्यूटीपी) शुरू हो सके। उसके बाद से पानी की उपलब्धता बढ़ाने के लिए कोई उल्लेखनीय क़दम नहीं उठाया गया। मुनक(करनाल) नहर में हरियाणा से साढ़े पाँच सौ से अधिक क्यूसेक पानी छोड़ा जाता है जिससे कि 425 क्यूसेक पानी वज़ीराबाद जलाशय में पहुँच सके। चन्द्रावल व वज़ीराबाद प्लाण्ट के लिए इतना पानी ज़रूरी है। यमुना से पानी वज़ीराबाद जलाशय में आता है। एक दशक से इस जलाशय की सफ़ाई नहीं हुई है। इस कारण गाद जमा होने से जलाशय की भण्डारण क्षमता कम हो गयी है। इस समस्या को दूर करने के लिए प्रत्येक दो से तीन वर्ष में जलाशय की सफ़ाई ज़रूरी है। लेकिन दिल्ली जल बोर्ड यह काम नहीं कर रहा है।

गर्मी के मौसम में नदी के किनारों में जमा पानी भी समाप्त हो जाता है। एमजीडी पानी ही उपलब्ध हो रहा है।

भारत में बढ़ता जल संकट

भारत में भूजल स्तर तेज़ी से घट रहा है और पारे का स्तर बढ़ रहा है। इसकी वजह से देश के कई राज्यों में लगातार सूखे की स्थिति बनी हुई है। पानी की उपलब्धता के बिना नहाने, बर्तन धोने और पीने के पानी जैसी रोज़मर्रा की ज़रूरतों को पूरा करने में भी बाधा आ रही हैं।

भारत की राजधानी दिल्ली का भूजल स्तर भी ख़तरे के निशान पर पहुँच चुका है। इसके अलावा, असमान और अकुशल वितरण से भी कोई मदद नहीं मिलती। साथ ही, अभी भी भारत में अधिकांश जल आपूर्ति की ज़रूरत खेती के लिए होती है जिसके कारण बाक़ी क्षेत्रों में जल आपूर्ति की समस्या पैदा हो जाती है।

पानी का एक बड़ा हिस्सा उद्योगों में भी इस्तेमाल होता है। नतीजतन, जब देश का जल स्तर गिरता है, तो इसका असर अनाज, फल, सब्ज़ियों और दूसरे उत्पादों के उत्पादन पर पड़ता है।

इस साल भी महाराष्ट्र के सतारा, जालना, बीड और नासिक जैसी जगहों पर भयंकर सूखा पड़ रहा है। इसी तरह नई दिल्ली, आन्ध्र प्रदेश आदि में भी कुएँ सूखने की समस्या है।

ज़ाहिरा तौर पर यह पूँजीवादी विकास का मॉडल ही है जो, अन्तिम विश्लेषण में, जल आपूर्ति की इस समस्या के लिए ज़िम्मेदार है। इस जल संसाधनों के प्रबन्धन में महत्वपूर्ण बदलाव करने की आवश्यकता है, जिसकी उम्मीद पूँजीवादी सरकारों से कम ही की जा सकती है।

यह रिश्ता क्या कहलाता है?

एक तरफ़ दिल्ली में लोग पानी की एक-एक बूँद को मोहताज हो रहे हैं, दूसरी तरफ़ आम आदमी पार्टी की शह पर टैंकर माफ़िया ख़ूब धड़ल्ले से पानी का गोरखधन्धा कर रहे है। आम आदमी पार्टी के नेता-मन्त्री एक तरफ़ अपने आप को पाक साफ़ दिखाते हुए ख़ूब ज़ुबानी जमाख़र्च कर रहे हैं और दूसरी तरफ़ टैंकर माफ़िया को संरक्षण भी दे रहे हैं। अवैध ट्यूबवेलों की खुदाई इसी आम आदमी पार्टी के नाक के नीचे हो रही है। भूमिगत जल का दोहन कर टैंकरों के ज़रिये पॉश इलाक़ों में ख़ूब पानी की सप्लाई दी जा रही है। इसी के साथ हरियाणा की मुनक नहर से आने वाले पानी की चोरी सीधे बवाना में नहर से की जा रही है। नहर के किनारे टैंकर लगा दिये जाते हैं, पानी भरकर इस पानी को अलग-अलग इलाक़ों में बेचा जा रहा है।

दिल्ली के संगम विहार, रोहिणी, वज़ीराबाद से लेकर बवाना तक में ये टैंकर माफ़िया फैले हुए हैं। इनकी पहुँच स्थानीय प्रशासन से लेकर पुलिस, नेता-मन्त्रियों तक है।

इस बीच पानी की आपूर्ति पर भाजपा और आम आदमी पार्टी के नेता-मन्त्रियों के बीच ख़ूब ज़ुबानी जंग चल रही है। इन तमाम आरोपों-प्रत्यारोपों के बीच भाजपा और आम आदमी पार्टी का चेहरा पूरी तरह से नंगा हो रहा है। उपराज्यपाल और जल मन्त्री दोनों अपनी ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़कर दिल्ली में पानी की कमी का कारण जनसंख्या और झुग्गी-बस्तियों के विस्तार होने को बता रहे हैं। ज़ाहिरा तौर पर, अपनी नाकामी छिपाने के लिये ये दोनों 'तू नंगा तू नंगा' का खेल खेल रहे हैं और सारी समस्या का ठीकरा मेहनतकश जनता के सिर पर फोड़ रहे हैं, जो दिल्ली में सबकुछ चलाती है और सबकुछ बनाती है और जिसकी मेहनत की लूट के दम पर यहाँ के धन्नासेठों, नेताओं-मन्त्रियों और नौकरशाहों की कोठियाँ चमक रही हैं। भाजपा और आम आदमी पार्टी जनता की तकलीफ़ों के प्रति कितने सवेंदनशील हैं, ये तो साफ नज़र आ रहा है।

केजरीवाल सरकार ने 700 लीटर मुफ़्त पानी देने का जो वायदा किया था उसे केवल अमीरज़ादों के लिए निभाया है। एक तरफ़ तो दिल्ली के मध्यम और उच्च-मध्यम वर्ग की सोसायटियों में पानी की दिक्क़त होने पर उसे तुरन्त प्रभाव से ठीक कर दिया जाता है, उनके कुत्ते और गाड़ी धोने के लिए भी पर्याप्त पानी का सप्लाई किया जाता है; वहीं दूसरी तरफ़ मज़दूर बस्तियों में पानी की इतनी भयंकर समस्या है कि आये दिन विवाद सामने आते रहते हैं। मज़दूर आबादी हफ़्ते भर के लिए पानी स्टोर करके रखती है। इस पानी की गुणवत्ता भी बहुत ख़राब है और पीने लायक नहीं है, जिसके कारण गन्दे पानी से होने वाली कई बीमारियाँ मज़दूर इलाकों में फ़ैल रही हैं। इन इलाक़ों में 350 से 450 टीडीएस के बीच ही पानी की सप्लाई होती है। लेकिन इन सबके बावजूद दिल्ली के मज़दूर इलाक़ों में पानी की समस्या के लिए कोई समाधान नहीं किया जाता है।

आज मज़दूर इलाक़ों में पानी को लेकर जनता के जुझारू आन्दोलन संगठित करने की आवश्यकता है। जनता को उनके इस बुनियादी हक़ के प्रति जागरूक बनाये जाने की आवश्यकता है। इस दिशा में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी व कई अन्य जन संगठन मिलकर उचित क़दम उठाने की तैयारी कर रहे हैं।

लखनऊ के अकबरनगर में लिखा गया योगी सरकार के बुलडोज़री न्याय का एक और काला अध्याय

● लालचन्द्र

जून के दूसरे सप्ताह में जब आसमान से आग बरस रही थी और रोज़ बड़ी संख्या में लोग गरमी से मर रहे थे तब उत्तर प्रदेश की योगी सरकार के बुलडोज़रों ने लखनऊ के अकबरनगर इलाक़े में कई दशकों से बसे घरों को ध्वस्त करके औरतों, बच्चों, बुज़ुर्गों और बीमारों सहित हज़ारों लोगों को सड़क पर फेंक दिया। फ़ैज़ाबाद रोड पर बादशाहनगर से कुछ आगे कुकरैल नदी (नाले) के किनारे बसी करीब 2000 घरों की इस बस्ती को देखते ही देखते 8-10 दिनों के अन्दर पूरी तरह ज़मींदोज़ कर दिया गया जहाँ कम से कम 30,000 लोग रहते थे। इस बस्ती में बच्चों के स्कूल थे, मदरसे थे, दुकानें थीं, डॉक्टरों की क्लीनिक थीं, मस्जिद और मन्दिर भी थे। आज वहाँ एक चौरस मैदान में मरघटी सन्नाटा पसरा है जहाँ मलबे में अपनी ध्वस्त कर दी गयी ज़िन्दगी के कुछ तिनके बीनते-तलाशते कुछ लोग दिख जाते हैं। फ़रवरी में भी यहाँ बुलडोज़र पहुँचे थे लेकिन हाई कोर्ट के आदेश और आने वाले लोकसभा चुनाव की वजह से लोगों को कुछ समय के लिए राहत मिल गयी थी। चुनाव ख़त्म होते ही भारी संख्या में पुलिस, पीएसी और रैपिड एक्शन फ़ोर्स लगाकर पूरे इलाक़े को छावनी में तब्दील कर दिया गया और डेढ़ दर्जन बुलडोज़रों को शिकारी कुत्तों की तरह गरीबों के आशियानों पर छोड़ दिया गया।

लखनऊ विकास प्राधिकरण (एलडीए) की ओर से यह तर्क दिया जा रहा है और भोंपू मीडिया बेशर्मी से इसीका कीर्तन कर रहा है कि कुकरैल नदी को पुनर्जीवित करने के लिए "अतिक्रमण" हटाये जा रहे हैं। लेकिन अगर सरकार कुकरैल नदी को लेकर वाक़ई चिन्तित होती तो सबसे पहले सड़कर बजबजाता हुआ गन्दा नाला बन चुकी इस नदी की सफ़ाई की ज़िम्मेदारी लेती। नदी में गिरने वाले कचरे का इन्तज़ाम करती। सीवेज ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट लगाती। हालत तो यह है कि गोमती नदी के लिए करोड़ों की लागत से बने सीवेज ट्रीटमेंट प्लाण्ट भी बरसों से बन्द पड़े हैं। लेकिन ऐसा कुछ करने के बजाय सीधे लोगों की बस्तियाँ उजाड़ने पर टूट पड़े विकास प्राधिकरण की नीयत पर कोई भी शक़ ही करेगा। अकबरनगर के बाद अब अबरारनगर और आदिलनगर जैसी दशकों से बसी बस्तियों को भी उजाड़ने की बात मीडिया में उछाली जाने लगी है।

नौजवान भारत सभा और बिगुल मज़दूर दस्ता की एक टीम ने कुछ समय पहले अकबरनगर का दौरा किया था। वहाँ लोगों से बात करने पर एलडीए के उपाध्यक्ष इन्द्रमणि त्रिपाठी का यह झूठ पकड़ा गया कि 2002 तक यहाँ कोई पक्के मकान ही नहीं थे। बहुत से लोगों ने कहा कि उनके परिवार 1965-66 से यहाँ रह रहे हैं। कई लोगों ने 40 साल पहले के पानी के बिल और अन्य रसीदें भी दिखायीं। दशकों से आम मेहनतकश लोगों ने यहाँ आकर अपनी मेहनत से और तमाम तकलीफ़ें सहकर इस जगह को रहने लायक बनाया। एलडीए, नगरनिगम, जलकल और बिजली विभाग सहित तमाम सरकारी विभागों ने यहाँ सुविधाएँ दीं, सड़कें और नालियाँ बनायी गयीं

यहाँ से अरबों रुपये टैक्स और शुल्क के रूप में वसूले जा चुके हैं। इतना ही नहीं, केन्द्रीय मंत्री, सांसद, मेयर और अन्य आला अफ़सरों ने यहाँ सोलर पैनल लगाने सहित तमाम तरह के कामों में अपने नामों की पट्टिकाएँ भी लगवायीं। अकबरनगर में लोगों की बसाहट तो करीब 60 साल पहले से शुरू हो गयी थी लेकिन 40 साल पहले एलडीए ने यहाँ की लगभग 24 एकड़ ज़मीन 'गृहविहीन समिति" के सचिव बच्चालाल के पक्ष में अवण्टित की थी। उस समय उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रहे अकबर अली खां के नाम पर इसका नाम अकबर नगर रखा गया था।

जब 50-60 सालों से यह सब चल रहा था तो यहाँ रहने वाले लोग "अवैध क़ब्ज़ा" करने वाले नहीं थे, वे भी नागरिक थे जो टैक्स और वोट देते थे। लेकिन अब अचानक उन सबको "अपराधी" घोषित कर दिया गया है जिनकी वजह से ही कुकरैल नदी मर रही है और राजधानी का पर्यावरण चौपट हो रहा है। अगर वे अपराधी हैं तो वे तमाम मंत्री और सरकारी अफ़सर उनसे बहुत बड़े अपराधी हैं जो दशकों से उनके यहाँ बसने में सहयोग करते रहे हैं। अपराधी वे तमाम मंत्री और अफ़सर हैं जिनकी शह पर बिल्डर माफ़िया ने हर शहर के जलाशयों, नालों और पार्कों को पाट और काट डाला है। मगर उन पर कभी कोई कार्रवाई नहीं होगी।

एलडीए और उत्तर प्रदेश सरकार लगातार यह झूठ भी बोल रहे हैं कि उजाड़े गये लोगों को घर दे दिये गये हैं। कुछ लोगों को घर दिये गये हैं जो अकबरनगर से 13 किलोमीटर दूर हरदोई रोड पर लगभग उजाड़ पड़ी कॉलोनी वसन्तकुंज में हैं। महज़ 280 वर्ग फुट में बने जो मकान वर्षों से ख़ाली पड़े थे और बिक नहीं रहे थे, उन्हें इन बदबख़्त लोगों के मत्थे मढ़ा जा रहा है। और वह भी मुफ़्त नहीं! अपनी सारी जमापूँजी अपने घर बनाने में लगाकर गँवा चुके लोगों से इन घटिया मकानों के पाँच-पाँच लाख रुपये वसूले जायेंगे। इससे भी बढ़कर यह है कि अकबरनगर में रहने वाले लोगों की सारी रोज़ी-रोटी उसी जगह के आसपास आधे किलोमीटर के दायरे में चलती थी। यहाँ ज़्यादातर लोग ग़रीब और निम्न मध्य वर्ग के हैं जो छोटी-मोटी दुकानें, रेहड़ी लगाने या मज़दूरी के काम करते हैं। बहुत सी औरतें पास की इन्दिरानगर और महानगर आदि कॉलोनियों के घरों में काम करने जाती थीं। उनके सिर्फ़ घर ही नहीं उजड़े हैं, उनकी सारी दुनिया ही उजाड़ दी गयी है। माँ-बाप की रोज़ी-रोटी ख़त्म, बच्चों की पढ़ाई-लिखाई ख़त्म, बरसों के दौरान बने रिश्ते, मुहल्लेदारियाँ, सुखदुख में काम आना – सबकुछ पर बुलडोज़र चल गया है।

वैसे तो हर पार्टी की सरकारें ग़रीबों की बस्तियाँ बेदर्दी से उजाड़ती रही हैं लेकिन भाजपा की सरकारें इस मामले में भी सबसे बर्बर हैं। और अगर उजाड़े जाने वालों में बड़ी तादाद मुसलमानों की हो तब तो इनके मंत्री और अफ़सर ज़्यादा ही जोश में आकर बुलडोज़रों को हाँकते हैं। चाहे फ़रीदाबाद की खोरी कॉलोनी हो जहाँ कोरोना काल में ही 2 लाख लोगों को उजाड़ दिया गया था या फिर हल्द्वानी की मुस्लिम बस्ती जहाँ 100 साल से बसे 50 हज़ार लोगों को उजाड़ डाला गया।

आज सबकुछ ग़रीबों-मेहनतकशों के ख़िलाफ़ है। सरकारें, चुनावी पार्टियाँ, अदालतें, प्रशासन, मीडिया – सब एक गिरोह की तरह मेहनतकशों के ख़िलाफ़ थैलीशाहों के युद्ध में उनके साथ लठैत बनकर खड़े हैं। चुनावी सभाओं में ग़रीबों, पिछड़ों, अल्पसंख्यकों की बड़ी-बड़ी बातें करने वाले सपाई और कांग्रेसी नेताओं को भी अकबरनगर के लोगों की आवाज़ सुनायी नहीं दी। अखिलेश यादव और राहुल गाँधी को उनके लिए एक ट्वीट करने की भी फ़ुरसत नहीं मिली। लेकिन ग़रीब लोगों में जिजीविषा ज़बर्दस्त होती है। बार-बार उजाड़े जाने के बाद भी वे फिर धूल से उठकर खड़े हो जाते हैं। आज उनके जीवन को धूल में मिलाया जा रहा है, लेकिन एक दिन ऐसा आयेगा जब यही आम लोग उठ खड़े होंगे और तब उनके सपनों के मलबे पर खड़े किये गये अमीरों के महल ढहाये जायेंगे। सब तख़्त गिराये जायेंगे और ताज उछाले जायेंगे।

पृथ्वी पर बढ़ती गर्मी और जलवायु परिवर्तन : पूँजीपतियों के मुनाफ़े की बलि चढ़ रही है हमारी धरती

● सार्थक

पूँजीवाद के हाथों हो रही प्रकृति की तबाही आज हमारे सामने एक विकट संकट बनकर खड़ी है। मुनाफ़े की हवस पर टिकी यह पूँजीवादी व्यवस्था पहले ही समाज के एक बड़े हिस्से को इन्सानी ज़िन्दगी देने की क्षमता खो चुकी थी लेकिन आज अपनी मरणासन्न अवस्था में यह प्रकृति की तबाही को इस मुक़ाम पर पहुँचा चुकी है कि समूची मानवजाति के सामने अस्तित्व का संकट पैदा हो गया है। तपती गर्मी, जलती लू, हड्डियाँ गलाने वाली शीत लहर, अनियमित बारिश और नियमित सूखा, पहले से कहीं अधिक विनाशकारी होती जा रही बाढ़ जो नियमित तौर पर आती है और चक्रवात, तेज़ी से पिघलते हिमनद, ज़हरीले वायु और प्रदूषित जल, सभी प्रकृति की तबाही के अलग अलग रूप हैं।

हालाँकि प्रकृति का विनाश पूरे मानव समाज के लिए अस्तित्व का संकट पैदा करता है लेकिन तात्कालिक तौर पर इसकी सबसे बड़ी मार मेहनतकश जनता को ही सहनी पड़ती है। मेहनतकश अवाम के पास न ही 'एयर कण्डीशनर' है और न ही 'रूम हीटर', न ही 'एयर प्यूरीफ़ायर' और न 'वाटर प्यूरीफ़ायर' है। हर क़दम पर मज़दूर वर्ग और मेहनतकश जनता का सामना पर्यावरणीय विनाश से होता है जो किसी ख़ूँख़ार राक्षस की तरह उनपर हमला करता है। फ़ैक्टरियों, कारख़ानों, वर्कशॉपों में दो वक़्त की रोटी के लिए कमरतोड़ मेहनत करने के बाद जब मेहनतकश जनता बाहर आती है तो उसे स्मॉग, लू, गन्दा पानी, ज़हरीली हवा ही मिलती है।

...उत्तर भारत के मैदानी इलाक़ों में इस साल चली भयंकर लू का मुख्य कारण ग्लोबल वार्मिंग ही है। वैज्ञानिकों का मानना है कि अगर ग्लोबल वार्मिंग ऐसे ही बढ़ता रहा तो शताब्दी के अन्त तक पृथ्वी का औसत तापमान औद्योगिक क्रान्ति के पहले के स्तर से 2 डिग्री बढ़ जायेगा और इससे लू की तीव्रता और नियमितता 30 गुना बढ़ जायेगी। आम मेहनतकश जनता की ज़िन्दगी को बेहाल करने में गर्मी और लू का जितना योगदान है उतना ही बड़ा हाथ उमस का भी है। उमस गर्मी को ज़्यादा जानलेवा बना देती है। जब गर्मी बढ़ने लगती है तो शरीर के अन्दर के तापमान को सुरक्षित दायरे में बनाये रखने के लिए पसीना आता है। हवा हमारी त्वचा से पसीना सोख लेती है और इससे शीतलन प्रभाव पैदा होता है। इस तरह हमारा शरीर ठण्डा रहता है। लेकिन अगर हवा में पहले से ही पर्याप्त नमी मौजूद है तो हवा हमारी त्वचा से पसीना सोख नहीं सकती है। इससे हमारे शरीर को प्राकृतिक तौर पर ठण्डा रखने का तंत्र काम करना बन्द कर देता है और अन्दर का तापमान बढ़ने लगता है। यदि यह प्रक्रिया कुछ घण्टे भी चलती रही तो हमारी मौत हो सकती है। हमारे रोज़मर्रा के अनुभव से भी हम यह जानते है कि सिर्फ़ तपती गर्मी या लू से उतनी तकलीफ़ नहीं होती जितनी तकलीफ़ गर्मी और उमस के एकसाथ होने से होती है।

...लान्सेट स्वास्थ्य पत्रिका में 2021 में छपी रिपोर्ट के अनुसार भारत में असामान्य तापमान के कारण हर साल 7 लाख से ज़्यादा लोगों की मौत होती है। इनमे से 6.5 लाख लोगों की मौत असामान्य ठण्डे तापमान और औसतन 80 हज़ार लोगों की मौत असामान्य गर्म तापमान के कारण होती है। असामान्य तापमान के कारण मरने वाले लोग आम तौर पर समाज के सबसे निचले तबक़े से आते हैं। इनमें सबसे ज़्यादा फ़ुटपाथ पर सोने वाले, रिक्शा-ट्रॉली खींचने वाले, लू के बावजूद बेलदारी करने के लिए मजबूर लोग, निर्माण कार्यों में लगे लोग शामिल हैं। इन्हें चौदह घण्टे कारख़ानों में हड्डियाँ गलाने के बाद भी दो वक़्त की रोटी नसीब नहीं होती। इनके शरीर पीढ़ियों की ग़रीबी, भुखमरी और कुपोषण से पहले से जर्जर होते हैं।

आप इस पूरे लेख को इस ऑनलाइन लिंक से पढ़ सकते हैं - **https://www.mazdoorbigul.net/archives/15468**

कुवैत में 49 प्रवासी मज़दूरों की जलकर मौत

खाड़ी देशों में प्रवासी मज़दूरों के नारकीय हालात से उपजा एक और हादसा

● आदित्य

पूरी दुनिया को चलाने और चमकाने का काम मेहनतकश मज़दूर आबादी ही करती है, लेकिन सिर्फ़ भारत ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में मज़दूरों के हालात इस पूँजीवादी व्यवस्था में बेहद जर्जर और नारकीय है। मुनाफ़े की अन्धी हवस के कारण एक तरफ़ हर रोज़ मज़दूरों-मेहनतकशों का शोषण बढ़ रहा है तो दूसरी तरफ़ सुविधाओं की भारी कमी तथा बेहद कम तनख्वाह होने के कारण आये दिन इनके साथ कोई न कोई घटना घटती रहती है, जिसके बाद घटनाओं को महज़ कोई दुर्घटना बता दिया जाता है, या फ़िर सारी ग़लती उनके ही मत्थे चढ़ा दी जाती है।

बीते 12 जून को कुवैत के अल अहमदी नगर पालिका के मंगफ़ क्षेत्र में भी ऐसी ही एक घटना घटी जब वहाँ के लेबर कैम्प में, जो कि एक सात मंज़िला इमारत थी, **आग लगने से 45 भारतीय मज़दूरों समेत 49 मज़दूरों की मौत हो गयी।** यह सारे प्रवासी मज़दूर थे जो कई सालों से वहाँ काम कर रहे थे। समस्त पूँजीवादी मीडिया तन्त्र द्वारा इसे एक दुर्भाग्यपूर्ण हादसा करार दिया जा रहा है और तमाम नेता-मन्त्रियों द्वारा शोक जताने का ढोंग किया जा रहा है। जबकि हक़ीक़त यह है कि यह हादसा इन प्रवासी मज़दूरों की बेहद निम्नस्तरीय जीवन स्थितियों और स्तरीय सुवधाओं के अभाव के कारण हुआ है। इसी बिल्डिंग में लगभग 200 लोग रहते थे, जो कि इसकी क्षमता से कहीं ज़्यादा था। इन प्रवासी मज़दूरों को कई बंकर बिस्तरों वाले कमरों में रखा जाता है, जिसमें निजी स्थान बेहद ही कम होता है। ठेकेदारों और मालिकों द्वारा आवास के ऊपर लागत कम करने के लिये बेहद कम जगह में इन मज़दूरों को ठूँस कर भेड़-बकरियों के तरह रखा जाता है। ऐसे में मंगफ़ जैसी घटना कोई आश्चर्यजनक या अभूतपूर्व घटना नहीं है। ऐसी घटनाओं के होने और उनके सुर्खियाँ बटोर लेने के बाद तमाम मालिक व सरकारी दलाल घड़ियाली आँसू बहाने आ जाते हैं, पर असल में इनका मक़सद बस इन घटनाओं के कारणों पर पर्दा डालना होता है।

इस घटना के बाद कुवैत के आन्तरिक मन्त्री फ़हाद अल-यूसुफ़ अल-सबाह ने कहा कि इन मौतों का कारण मुख्यतः एनबीटीसी (जिस कम्पनी के लिये मज़दूर काम करते थे और वे जिनके कैम्प का हिस्सा थे) है। उन्होंने घोषणा की कि कम्पनी के अधिकारियों को आपराधिक रूप से दोषी ठहराया जायेगा और नगरपालिका के अधिकारियों को भवन संहिता बनाये रखने में उनकी विफलता के लिए निलम्बित किया जायेगा। लेकिन यह बस तात्कालिक घटना के सामने आने पर दिखावा करने भर है।

खाड़ी देशों में प्रवासी मज़दूरों के हालात

खाड़ी सहयोग परिषद (जीसीसी) देशों – बाहरीन, कुवैत, ओमान, क़तर, सऊदी अरब तथा सयुंक्त अरब अमीरात आदि में- एक बड़ी संख्या प्रवासी लोगों की है। पूरी दुनिया की 10 प्रतिशत प्रवासी आबादी इन देशों में रहती है। सिर्फ़ कुवैत की बात करें तो लगभग 70 प्रतिशत आबादी प्रवासी है और इनमें भी सबसे ज़्यादा 21 प्रतिशत भारतीय प्रवासियों की है। अगर देश के कुल कार्यशक्ति की बात की जाये तो देश की कुल कार्यशक्ति में प्रवासी लोगों की हिस्सेदारी 78.7 प्रतिशत है। ये मज़दूर मुख्य रूप से दक्षिण एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया और अफ़्रीका से आते हैं। ये मज़दूर निर्माण, घरेलू काम और अन्य कम वेतन वाले क्षेत्रों में कार्यरत हैं जो इस क्षेत्र की तेज़ी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं के लिए महत्वपूर्ण हैं।

यहाँ प्रवासी मज़दूरों के लिये लेबर कैम्प बनाये जाते हैं जहाँ इनकी ज़िन्दगी बेहद ही दयनीय होती है और उनकी कमाई का एक बड़ा हिस्सा इसमें ही जाता है। इन लेबर शिविरों में भयंकर भीड़ होती है और मज़दूर तंग परिस्थितियों में रहने को मजबूर होते हैं। ख़राब रखरखाव और ग़ैर-मान्यता वाले विद्युत उपकरणों के उपयोग के कारण इन शिविरों में दोषपूर्ण वायरिंग और विद्युत प्रणालियाँ आम हैं। कई मज़दूरों के एक साथ विद्युत उपकरणों का उपयोग करने के कारण ओवरलोड की समस्या आमतौर पर रहती है जिसकी वजह से शॉर्ट सर्किट होने और आग लगने की सम्भावना बनी रहती है। इतना ही नहीं दोषपूर्ण वायरिंग और विद्युत प्रणालियों के अलावा, कई मज़दूर शिविरों में उचित खाना पकाने की सुविधा नहीं होती है, जिसके कारण मज़दूर खाना बनाने के लिये अस्थायी व्यवस्था जैसे पोर्टेबल गैस स्टोव का उपयोग करते हैं जो असुरक्षित हैं और इनका अनुचित संचालन आग का कारण बनते हैं। अग्नि सुरक्षा प्रशिक्षण और उपकरणों की कमी, जैसे कि अग्निशामक यन्त्र और स्मोक डिटेक्टर आदि जोखिम को और बढ़ा देते हैं। मज़दूरों में अक्सर बुनियादी अग्नि सुरक्षा ज्ञान की कमी होती है, जो प्रभावी आपातकालीन प्रतिक्रियाओं में बाधा डालती है। भीड़भाड़ के कारण आग लगने की स्थिति में जल्दी से बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है। खराब वेंटिलेशन और निर्माण में ज्वलनशील पदार्थों के इस्तेमाल से आग के तेज़ी से फैलने का जोखिम भी बहुत ज़्यादा होता है। ज़्यादातर मज़दूरों की मौत का कारण भी आमतौर पर धुएँ के वजह दम घुटना होता है।

यही स्थितियाँ मज़दूरों के कार्यस्थल पर भी मौजूद हैं जहाँ बेहद अमानवीय तरीक़े से उनसे काम लिया जाता है। खाड़ी देशों में प्रवासी कामगारों ने कई तरह की ख़राब कार्य स्थितियों की शिक़ायत दर्ज करायी है। ये शिक़ायतें आम तौर पर ख़राब कार्यस्थितियों, वेतन में कटौती, उत्पीड़न आदि को लेकर की गयीं थीं।

मंगफ़ में हुई घटना कोई पहली घटना नही है जो खाड़ी के देशों में हुई है। 2018 में कुवैत के ही अल अहमदी में एक मज़दूर शिविर में आग लगने से पाँच मज़दूरों की मौत हो गयी थी। इस घटना में भीड़भाड़ और अग्नि सुरक्षा उपायों की कमी को प्राथमिक कारण बताया गया था। 2012 में क़तर के दोहा औद्योगिक क्षेत्र में एक मज़दूर शिविर में आग लगने से 11 मज़दूरों की मौत हो गयी थी और कई अन्य घायल हो गये थे। आग लगने का कारण बिजली का शॉर्ट सर्किट बताया गया था। 2020 में दोहा में एक अन्य मज़दूर शिविर में आग लगने से कई मज़दूरों की मौत हो गयी थी। 2015 में सऊदी अरब के रियाद में एक मज़दूर शिविर में आग लगी थी, जिसमें 10 मज़दूरों की मौत हो गयो थी और दर्जनों अन्य घायल हो गये थे। जाँच में पता चला कि आग रसोई क्षेत्र में असुरक्षित खाना पकाने के तरीक़ों के कारण लगी थी। 2016 में, संयुक्त अरब अमीरात के आबू धाबी में एक मज़दूर शिविर में आग लगने से दो श्रमिकों की मौत हो गयी और कई अन्य घायल हो गये थे। आग ख़राब एयर कण्डीशनिंग यूनिट के कारण लगी थी। संयुक्त अरब अमीरात के दुबई में भी मज़दूर शिविरों में आग लगने की कई घटनाएँ सामने आयी हैं, जो अक्सर बिजली की ख़राबी और साथ ही दयनीय रिहाइशी स्थितियों की वजह से हुई हैं। ये तो महज़ कुछ प्रातिनिधिक घटनाएँ हैं, ऐसी दर्जनों और घटनाएँ हैं जो यहाँ हुई हैं या अक्सर होती रहतीं हैं।

घोर मज़दूर-विरोधी कफ़ाला प्रणाली

खाड़ी के देशों में प्रवासी मज़दूरों के लिये कफ़ाला प्रणाली मौजूद है। कफ़ाला प्रणाली क़ानूनों और नीतियों का एक समुच्चय है जो प्रवासी मज़दूरों पर नियन्त्रण रखने के लिये ही बनाया गया है। इसके तहत कोई भी प्रवासी मज़दूर ठेकेदारों या मालिकों के पूर्ण नियन्त्रण में होता है। इसके अन्तर्गत मज़दूरों को देश में प्रवेश करने, वहाँ रहने और काम करने तथा वहाँ से बाहर जाने के लिये पूरी तरह से ठेकेदारों और मालिकों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। आमतौर पर अपने अनुबन्ध के पूरा होने से पहले, एक निश्चित समयावधि से पहले या अपने नियोक्ता की अनुमति के बिना वे नौकरी नहीं छोड़ सकते या उसे बदल नहीं सकते। जो लोग किसी कारण से नौकरी छोड़ते हैं, उन्हें फ़रार होने के अपराध में गिरफ़्तार तक कर लिया जाता है और कई मामलों में निर्वासित भी कर दिया जाता है। सीधे शब्दों में कहें तो कफ़ाला प्रणाली ठेकेदारों और मालिकों को शोषण करने की क़ानूनी इजाज़त देती है और इसके तहत मज़दूर बेहद कम तनख्वाह पर और नारकीय कार्य स्थितियों व जीवन स्थितियों में ग़ुलामों की तरह काम करने को मजबूर होते हैं।

हालाँकि असल मायनों में मज़दूरों के हालात इससे भी बदतर होते हैं और उन्हें भयंकर शोषण व अत्याचार का सामना करना पड़ता है। पहले तो मज़दूरों के तमाम ज़रूरी कागज़ात ठेकेदारों-मालिकों-नियोक्ताओं द्वारा ज़ब्त कर लिये जाते हैं, जिससे वे किसी भी तरह उनके क़ाबू में बने रहें और उनसे मनमाना काम लिया जा सके। इसके बावजूद अगर कोई मज़दूर इस शोषण से परेशान होकर अपनी नौकरी छोड़ता है या देश से बाहर जाने की कोशिश करता है तो उन्हें न केवल अपनी आय अर्जित करने के साधन खोने का जोखिम उठाना पड़ता है, बल्कि अवैध प्रवासी बनने का और जेल में सज़ा काटने का जोखिम भी उठाना पड़ता है। इतना ही नहीं, मज़दूरों को "सबक सिखाने" के लिये कई दफ़ा उनपर चोरी या अन्य झूठे आरोप भी लगा दिये जाते हैं।

मोदी सरकार का रवैया

सत्ता में बैठी मोदी सरकार वैसे तो देश में ज़ोरों-शोरों से प्रचार करती है कि उसने देश का नाम विदेशों में चमका दिया है और वह पूरी दुनिया में देशवासियों की सेवा में लगी हुई है; लेकिन हक़ीक़त यह है कि यह सरकार देश और विदेश, हर जगह, बस अम्बानी-अडानी जैसे पूँजिपतियों की सेवा में लगी है तथा दुनिया के हर हिस्से में मज़दूरों के शोषकों को इसका पूर्ण समर्थन है। कहने को तो जुमलों के ढेर पर खड़ी इस सरकार ने यह भी प्रचार किया था कि इसने "वॉर भी रुकवा दी", और देशवासियों को "सही सलामत वापस ले आये", परन्तु इसकी सच्चाई आज सबके सामने है। ज्ञात हो कि यूक्रेन में फँसे कई छात्रों व आम लोगों ने भारत सरकार पर सुचारू बचाव कार्यवाई न करने व उन्हें मुसीबत में अरक्षित छोड़ने का आरोप लगाया था।

बहरहाल खाड़ी देशों में प्रवासी मज़दूरों की बात करें तो इनमें सबसे बड़ी संख्या भारत से गये मज़दूरों की है। सबसे पहले तो भारत से मज़दूरों की इतनी बड़ी संख्या इसलिए ही पलायन करके वहाँ जाने को मजबूर होती है क्योंकि अपने देश में ही उन्हें अच्छा रोज़गार नहीं मिल पाता। एक अच्छी ज़िन्दगी का सपना दिखाकर उन्हें क़ानूनी व ग़ैर-क़ानूनी (वैसे इन ग़ैर-क़ानूनी तरीक़ों को भी अप्रत्यक्ष रूप से सरकार द्वारा शह प्राप्त होती है) तरीक़े से विदेशों में भेजा जाता है जहाँ उनके पासपोर्ट और वीज़ा ज़ब्त कर लिये जाते हैं और वहाँ उन्हें बन्धुआ मज़दूर की तरह खटाया जाता है। कुवैत जैसी किसी घटना के बड़े स्तर पर सामने आ जाने पर तुरन्त ही सरकार दिखावटी शोक ज़ाहिर करने लगती है, लेकिन वहाँ के मज़दूरों के हालात पर चूँ तक नहीं करती। वैसे इनसे यह उम्मीद करना ख़याली पुलाव पकाने जैसा ही होगा क्योंकि जो सरकार अपने ही देश में मज़दूरों के शोषण की दर को बढ़ाने के लिये क़ानून लेकर आती हो वह भला दूसरे देशों में हो रहे शोषण पर क्या ही बोलेगी! हाँ, लेकिन इनका एक प्रतिनिधि मण्डल शोक व्यक्त करने फ़ौरन कुवैत ज़रूर पहुँच जाता है जब वहाँ के पूर्व अमीर शेख नवाफ अल-अहमद अल-जबर अल-सबा की मृत्यु होती है। भारत और तमाम खाड़ी देशों की सरकारों का रवैया तो कोविड-19 के समय भी देखने को मिला था जब लाखों प्रवासी मज़दूरों को वहाँ उनके हालात पर छोड़ कर उन्हें देश से निर्वासित कर दिया गया था।

ऐसा कत्तई नहीं है कि भारत सरकार को खाड़ी देशों में मज़दूरों की अमानवीय स्थिति के बारे में पता न हो। 2019 से लेकर 30 जून 2023 तक बाहरीन, ओमान, कुवैत, संयुक्त अरब अमीरात, क़तर और सऊदी अरब में भारतीय दूतावासों को भारतीय प्रवासी मज़दूरों से कुल मिलाकर 48,095 शिक़ायतें मिलीं हैं। 23,020 शिक़ायतों के साथ कुवैत शीर्ष पर है, जबकि 9,346 शिक़ायतों के साथ सऊदी अरब दूसरे स्थान पर है। इतनी शिक़ायतों के बावजूद इनपर भारत सरकार द्वारा कोई क़दम नहीं उठाया गया। इन आँकड़ों से यह साफ़ हो जाता है कि खाड़ी देशों में हो रहे मज़दूरों के शोषण में भारत सरकार का भी पूर्ण सहयोग है।

खाड़ी व अरब देशों में मज़दूर यूनियनों की हालत

खाड़ी व अरब देशों में मज़दूर यूनियनें न के बराबर मौजूद हैं। इसका सबसे बड़ा कारण ऐसे तमाम क़ानूनों का होना है जिनके तहत मज़दूरों को किसी भी तरह से संगठित होने पर रोक है। कफ़ाला प्रणाली के इस्तेमाल पर हम पहले ही बात कर चुके हैं कि कैसे यह मज़दूरों को नियन्त्रण में रखने का काम करती है। ऐसे में किसी मज़दूर का विरोध करना या किसी भी तरह का संगठन बनाना बेहद ही मुश्किल हो जाता है। यह प्रणाली 20वीं सदी की शुरुआत में मोती उद्योग व अन्य वाणिज्यिक व्यापारों के लिए सस्ते श्रम उपलब्ध कराने के लिए बनायी गयी थी। खाड़ी सहयोग परिषद (जीसीसी) क्षेत्र में प्रवासी मज़दूरों को इसलिए ही संगठित करना बेहद कठिन है और अपने अधिकारों के बारे में बोलने पर उन्हें सज़ा भी भुगतनी पड़ती है।

हालाँकि कुछ देशों जैसे बाहरीन और ओमान में कुछ हद तक यूनियनें मौजूद हैं पर वे बस नाम मात्र की ही

(पेज 6 पर जारी)

बर्बरता की सारी हदों को पार करने के बाद भी फ़िलिस्तीनी अवाम के मुक्तिस्वप्न को डिगा नहीं पाये हैं ज़ायनवादी हत्यारे!

● प्रियम्वदा

फ़िलिस्तीन
एक समूची ज़मीन है,
और ज़मीन से मुकम्मल प्यार
इसलिए तुम्हारी मार से
बाहर है
फ़िलिस्तीन आज़ादी का
ज़रूरी भविष्य है
जनरल।
फ़िलिस्तीन
लोहू और इस्पात
से फूटता हुआ गुलाब है
कभी न मुरझाने वाला गुलाब
जो आखिर में उगेगा
तुम्हारी क़ब्र पर।

– गोरख पाण्डेय

ज़ायनवादी इज़रायल और साम्राज्यवादी अमेरिका द्वारा फ़िलिस्तीनी अवाम का क़त्लेआम बदस्तूर जारी है। लेख लिखे जाने तक तक़रीबन 37,296 लोग मारे जा चुके हैं जिसमें 15 हज़ार से अधिक बच्चे हैं। यह महज़ कोई भी संख्या नहीं है बल्कि यह फ़िलिस्तीनी बच्चों, बूढ़ों, नौजवानों, स्त्रियों की संख्या है जिनका पिछले 9 महीनों में ज़ायनवादियों और इज़रायली उपनिवेशवादियों द्वारा कत्लेआम किया जा चुका है।

पिछले 9 महीनों से जारी ज़ायनवादियों द्वारा हमलों की वजह से फ़िलिस्तीनी जनता की स्थिति की कल्पना कर पाना भी हमारे लिये मुश्किल है। उपनिवेशवादियों द्वारा जारी इस नरसंहार की भयावहता को हम कुछ आँकड़ों के ज़रिये देख सकते हैं।

पैलेसटीनियन सेन्टर फ़ॉर पॉलिसी एण्ड सर्वे रिसर्च द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार गाज़ा में रहने वाले 60 फ़ीसदी लोगों ने बीते 9 महीनों में अपने परिवार के किसी न किसी सदस्य को खोया है और 80 फ़ीसदी लोग ऐसे हैं जिनके घर से कोई न कोई इज़रायली हमले में मारा गया है या फ़िर घायल हुआ है। 7 अक्टूबर 2023 से जारी इस क़त्लेआम में गाज़ा शहर मलबे और लाशों के ढेर में तब्दील हो चुका है। रिहायशी इलाक़ों के 60 फ़ीसदी घर नष्ट किये जा चुके हैं। कुल 35 अस्पतालों में से 12 या 13 बमुश्किल काम कर पा रहे हैं। वहीं स्कूलों की कुल संख्या का 88 फ़ीसद बमवर्षा की चपेट में आ चुका है। बाज़ार को पूरी तरह ख़त्म कर दिया गया है। दवाइयाँ और भोजन-पानी जैसी बुनियादी सुविधाओं को भी लोगों तक पहुँचने से रोका जा रहा है। बौखलाये ज़ायनवादी एम्बुलेंस पर हमले कर रहें हैं, अस्पतालों-स्कूलों पर, शरणार्थी कैम्पों पर हमले कर रहे हैं। "सबसे सुरक्षित" घोषित किये गये स्थानों पर बमों की बारिश करके साम्राज्यवादियों ने इसी बौखलाहट का परिचय दिया है। रफ़ा में किया गया हमला, नूसरत रिफ्यूजी कैम्प से लेकर 11 जून को एक स्कूल पर किया गया हमला इसी के उदाहरण हैं। अक्टूबर से लेकर अबतक गाज़ा पर इज़रायली ज़ायनवादियों ने 70,000 टन बम बरसाया है जो अबतक के युद्धों में इस्तेमाल किये गये विस्फोटकों से कहीं ज़्यादा है।

पहले ही फ़िलिस्तीनी अवाम को उनकी जगह-ज़मीन से दर-बदर करके वेस्ट बैंक और गाज़ा में समेट दिया गया था। अक्टूबर से लेकर अबतक हुए हमलों में गाज़ा में भी कोई सुरक्षित जगह नहीं बची है। दस लाख से भी ज़्यादा लोग यानी गाज़ा की आधी से अधिक आबादी रफ़ा के एक हिस्से में रहने के लिये मज़बूर है। वहाँ भी हमलों के बाद स्थिति बदतर हो चुकी है। इज़रायली सेना द्वारा सभी रास्तों को बन्द करने और पूरे इलाक़े की घेरेबन्दी की वजह से लोगों को बुनियादी सुविधाएँ भी मयस्सर नहीं हैं। हवाई हमलों और गोलाबारी में मौत के अलावा हर रोज़ लोग भूख से दम तोड़ रहे हैं। दवा-इलाज़ की कमी से मरने को मजबूर हैं।

दुनिया के एक हिस्से में जारी इस बर्बरता के पीछे क्या कारण है? इसकी जड़े कहाँ हैं? क्यों इज़रायल और अमेरिका पूरी फ़िलिस्तीनी क़ौम को तबाह-बर्बाद करने पर तुले हैं?

इसको समझने के लिए हमें फ़िलिस्तीन और इज़रायल के इतिहास से परिचित होना होगा।

इज़रायल नाम का कोई देश दुनिया के नक्शे पर 1948 से पहले नहीं था। जिस देश को आज इज़रायल का नाम दिया जा रहा है वह वास्तव में फ़िलिस्तीन ही है। फ़िलिस्तीन की जगह-ज़मीन पर इज़रायल को इसलिए बसाया गया क्योंकि 1908 में मध्य-पूर्व में तेल के खदान मिले जो कुछ ही वर्षों के भीतर पश्चिमी साम्राज्यवाद के लिए सबसे रणनीतिक माल बन गया और इसपर ही अपना क़ब्ज़ा जमाने के लिये ज़ायनवादी उपनिवेशवादी व नस्ली श्रेष्ठतावादी राज्य की स्थापना फ़िलिस्तीन की जनता को उनकी ज़मीन से बेदखल करके करने की शुरुआत हुई। इसके लिए ब्रिटेन ने ज़ायनवादी हत्यारे गिरोहों को फ़िलिस्तीन ले जाकर बसाना शुरू किया, उन्हें हथियारों से लैस किया और फिर 1917 से 1948 के बीच हज़ारों फ़िलिस्तीनियों का इन ज़ायनवादी धुर-दक्षिणपन्थी गुण्डा गिरोहों द्वारा क़त्लेआम किया गया और लाखों फ़िलिस्तीनियों को उनके ही वतन से बेदखल करने का काम शुरू हुआ। बाद में अमेरिकी साम्राज्यवाद की सरपरस्ती में इज़रायली ज़ायनवादियों द्वारा यह काम अंजाम दिया गया। यह प्रक्रिया आज भी अपने सबसे बर्बर रूप में जारी है।

यही कारण है कि इज़रायल कोई वास्तविक देश नहीं है बल्कि यह एक सेटलर उपनिवेशवादी राज्य है जो मध्य-पूर्व में पश्चिमी साम्राज्यवाद के हितों, विशेषकर तेल से जुड़े रणनीतिक हितों और उनके मुनाफ़े की हिफ़ाज़त के लिए खड़ा किया गया है।

इसलिए, ज़ायनवादी इज़रायल और साम्राज्यवादी अमेरिका द्वारा अंजाम दी जा रही इस बर्बरता के पीछे कारण सिर्फ़ यह नहीं है कि वे बर्बर और क्रूर हैं बल्कि इसके पीछे मुनाफ़े के वे सौदे हैं जिनके बिना इस क़िस्म और पैमाने की बर्बरता और नरसंहार को अंजाम दे पाना मुश्किल हैं। जर्मन नाटककार व कवि ब्रेख्त के शब्दों में कहें तो "बर्बरता बर्बरता से पैदा नहीं होती बल्कि उन व्यापारिक समझौतों से पैदा होती है जिन्हें बर्बरता के बिना अंजाम दे पाना सम्भव नहीं होता।"

हमारे देश के हुक्मरानों के हाथ भी इस क़त्लेआम में शामिल हैं! इस नरसंहार में फ़ासीवादी मोदी सरकार भी भागीदार है!!

हमारे देश में पूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टी कांग्रेस और उनके नुमाइन्दे महात्मा गाँधी से लेकर नेहरू और इन्दिरा गाँधी तक ने फ़िलिस्तीन की मुक्ति का समर्थन किया था मगर फ़ासीवादी भाजपा सरकार ने इस मसले पर भी अपना दोमुँहा रवैया दिखाया है। भारतीय फ़ासिस्ट एक तरफ़ तो दुनिया को दिखाने के लिये गाज़ा में राहत सामग्री भेजने की नौटंकी कर रहे थे तो दूसरी तरफ़ इज़रायल में भारतीय मज़दूर भेजे जा रहे थे ताकि वहाँ युद्ध में आपूर्ति के लिये ज़रूरी सामानों के पैदावार में कमी न आये। मोदी सरकार लगातार इज़रायली हत्यारों की माँग पर विस्फोटक और हथियार की सप्लाई कर रही थी।

'द वायर' न्यूज़ पोर्टल में आयी एक रिपोर्ट के अनुसार हैदराबाद स्थित अडानी डिफेंस एण्ड एयरोस्पेस और इज़रायल की एलबिट सिस्टम्स के बीच हुए सौदे में 2019 से 2023 के दौरान इज़रायल को 900 यूएवी/ड्रोन विशेष रूप से सैन्य इस्तेमाल के लिए भेजे गये और भारत द्वारा निर्मित गोला-बारूद का निर्यात किया गया।

फ़रवरी 2024 के पहले सप्ताह में, इसी अडानी-एलबिट एडवांस्ड सिस्टम्स इंडिया लिमिटेड ने इज़रायल को 20 से अधिक भारत निर्मित (जिसे 'दृष्टि 10' नाम दिया गया है) यूएवी/ड्रोन निर्यात किये हैं।

मालूम हो कि रक्षा मन्त्रालय के अन्तर्गत आने वाली पब्लिक सेक्टर की एक कम्पनी म्युनिशन इण्डिया लिमिटेड (एमआईएल) को भी जनवरी 2024 तक अपने उत्पादों को इज़रायल भेजने को कहा गया था। 18 अप्रैल 2024 को, कम्पनी ने इज़रायल से एक रिपीट ऑर्डर के तहत उन्हीं उत्पादों के निर्यात के लिए फिर से आवेदन किया है। इसी तरह, एक निजी भारतीय कम्पनी, प्रीमियर एक्सप्लोसिव्स लिमिटेड (पीईएल) (जो कम से कम 2021 से डायरेक्टोरेट जनरल ऑफ फॉरिन ट्रेड से मिलने वाले लाइसेंस के तहत इज़रायल को विस्फोटक और सम्बद्ध सामान निर्यात कर रही है) को पिछले साल गाज़ा पर इज़रायल के युद्ध शुरू होने के बाद से दो बार 20 नवम्बर, 2023 और 01 जनवरी, 2024 को विस्फोटक पदार्थों का निर्यात करने की अनुमति दी गयी है।

मालूम हो कि नरेन्द्र मोदी सरकार ने 12 दिसम्बर 2023 को गाज़ा में तत्काल युद्धविराम के लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा के प्रस्ताव के पक्ष में मतदान किया था लेकिन चार महीने बाद मोदी सरकार ने अपने दिसम्बर 2023 के रुख के विपरीत जाकर मतदान से परहेज़ किया यानी 5 अप्रैल को भारत उन 13 देशों में से एक था, जिन्होंने संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद (यूएनएचआरसी) द्वारा पारित प्रस्ताव, जिसमें गाज़ा में तत्काल युद्धविराम और इज़रायल को हथियार भेजने पर प्रतिबन्ध लगाने का आह्वान किया गया था, के पक्ष में मतदान नहीं किया। यह साफ़ था कि भारत सरकार, जो इज़रायल को हथियार बेच रही थी, वह इस नरसंहार के बावजूद इज़रायल को हथियार भेजना जारी रखना चाहती थी।

मोदी सरकार के सत्तासीन होने के बाद से इज़रायली ज़ायनवादी हत्यारी औपनिवेशिक सत्ता के साथ भारत की करीबी बढ़ी है। हमारे देश में इन्साफ़ और जनवाद के लिये लड़ रहे लोगों को कुचलने के तौर–तरीक़े यहाँ की पुलिस और सेना को सिखाने के लिये इज़रायल की पुलिस व खुफ़िया एजेंसी मोसाद के लोग नियमित तौर पर भारत बुलाये जाते हैं। खुफ़िया पेगासस ऐप भी भारतीय सरकार को इज़रायली ज़ायनवादियों से ही मिला है। इसलिए मोदी सरकार ने गाज़ा में इज़रायली ज़ायनवादियों और अमेरिकी साम्राज्यवादियों द्वारा अंजाम दिये जा रहे नरसंहार के खिलाफ़ भारत में हो रहे तमाम प्रदर्शनों को कुचलने का काम किया। गाज़ा की मुक्ति के पक्ष में खड़े हो रहे लोगों को बलपूर्वक हिरासत में लेने और उन्हें चुप कराने के सारे तौर-तरीक़े अपनाये।

यह साफ़ है कि गाज़ा में जारी नरसंहार को जारी रखने के लिये इज़रायली हत्यारों के साथ मोदी सरकार भी इसमें भागीदारी कर रही है। फ़ासीवादी ताक़तें और ज़ायनवादी-उपनिवेशवादी न सिर्फ़ अपने देश की जनता के दुश्मन है बल्कि यह पूरी दुनिया की मेहनतकश आबादी के दुश्मन हैं।

लेकिन इन सबके बावजूद फ़िलिस्तीन की जनता ने पिछले 9 महीनों के अपने संघर्ष के दौरान साम्राज्यवादी ताक़तों को यह दिखला दिया है कि उनके बड़े से बड़े हथियारों के जखीरों, गोला-बारूदों, टैंकरों और तमाम यातनाओं के बावजूद भी वह फ़िलिस्तीन के मुक्तिस्वप्न को तोड़ नहीं पाये हैं। फ़िलिस्तीनी अवाम आज भी इस बर्बरता और विभीषिका को झेलते हुए डटकर लड़ रही है और दुनियाभर में इन्साफ़पसन्द लोग फ़िलिस्तीनी मुक्ति के समर्थन में सड़कों पर उतर रहे हैं और यह लड़ाई फ़िलिस्तीनी राज्य की स्थापना और ज़ायनवादियों के विनाश के साथ ही ख़त्म होगी।

कुवैत में 49 प्रवासी मज़दूरों की जलकर मौत

(पेज 5 से आगे)

हैं। सीरिया, यमन, और कुवैत में कहने को तो सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के कर्मचारी संगठित हो सकते हैं, लेकिन निजी क्षेत्र में प्रभावी मज़दूर संगठनों के साक्ष्य बहुत कम हैं। जो हैं उनमें भी प्रवासी मज़दूरों के लिये कोई जगह नहीं होती। कुल मिलाकर खाड़ी के तमाम देशों में मज़दूरों की हालत बहुत ही ख़राब है जिसकी जानकारी तमाम सरकारों व अन्तरराष्ट्रीय संगठनों को भी है, बावजूद इसके इसपर कोई कार्रवाही नहीं होती और तमाम प्रवासी मज़दूर चन्द मुट्ठीभर लोगों के मुनाफ़े की हवस का शिकार होने को मजबूर होते हैं।

रास्ता क्या है?

सार यह है कि दुनिया के तमाम शोषक शोषितों का शोषण करने के लिये एकजुट हैं। पूरी दुनिया को अपनी मेहनत से जगमगा देने वाले मज़दूर ख़ुद अँधेरे में जीने को मजबूर हैं। इनकी मुक्ति का रास्ता सिर्फ़ ऐसी एक व्यवस्था ही हो सकती है जिसमें सत्ता सर्वहारा वर्ग के हाथ में हो, जैसे पेरिस कम्यून, रूस और चीन के मज़दूरों ने करके दिखाया था। अत: आज यह बेहद ज़रूरी है कि दुनिया के हर कोने में एक सही दिशा में, सही विचारधारा के साथ मज़दूरों को संगठित व एकजुट किया जाये। यह काम मुश्किल ज़रूर हैं, लेकिन इसके अलावा कोई और रास्ता है भी नहीं। असल मायने में पूरी दुनिया के स्तर पर जब तक मज़दूरों का राज नही क़ायम हो जाता, यह शोषण ख़त्म नही हो सकता। ऐसे में अनायास ही मार्क्स और एंगेल्स का वह नारा याद आ जाता है – **"दुनिया के मज़दूरो, एक हो!"**

लोकसभा चुनावों में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) के पाँच प्रत्याशियों का प्रदर्शन

● भारत

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) ने इस बार के लोकसभा चुनाव में दूसरी बार रणकौशलात्मक भागीदारी की। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी ने पाँच सीटों पर अपने उम्मीदवार खड़े किये थे : दिल्ली उत्तर-पूर्व, दिल्ली उत्तर-पश्चिम, कुरुक्षेत्र, सन्तकबीर नगर और पुणे। इन सभी जगहों पर आरडब्ल्यूपीआई ने जनता के बीच क्रान्तिकारी प्रचार किया, समाजवादी क्रान्ति के कार्यक्रम का प्रचार किया, फ़ासीवादी मोदी सरकार और उसकी नीतियों को बेनक़ाब किया, समूची पूँजीवादी व्यवस्था को बेनक़ाब किया और जनता के ठोस मुद्दों पर एक ठोस कार्यक्रम और ठोस नारों के साथ काम किया। लोकसभा निर्वाचन मण्डल में हम आम तौर पर समूचे क्षेत्र को कवर नहीं कर सकते। वजह यह है कि ये इतने बड़े होते हैं कि इसमें क्रान्तिकारी प्रचार को पूर्णता के साथ करने के लिए जिस प्रकार के धनबल की ज़रूरत होती है, वह पूँजीवादी दलों के पास ही हो सकती है या फिर एक देशव्यापी क्रान्तिकारी पार्टी के पास। सभी लोकसभा सीटों पर मतदाताओं की औसत संख्या हमारे देश में 22,29,410 है। उनका भौगोलिक विस्तार भी भारी है।

हमने आम मेहनतकश जनता का आह्वान किया था कि उपरोक्त पाँच निर्वाचन मण्डलों में वह एकजुट होकर आरडब्ल्यूपीआई के उम्मीदवारों को वोट दे, जबकि बाकी सभी निर्वाचन मण्डलों में भाजपा की हार को सुनिश्चित करे। किसी अन्य पूँजीवादी पार्टी का सकारात्मक समर्थन करना एक स्वतन्त्र सर्वहारा अवस्थिति का परित्याग होता है। लेकिन फ़ासीवादी बुर्जुआ पार्टी अन्य सभी पूँजीवादी पार्टियों से भिन्न होती है। ऐसे में, सर्वहारा वर्ग की मनोगत शक्तियों की कमज़ोर और बिखरी स्थिति को देखते हुए यह नकारात्मक नारा ही सबसे सटीक नारा था। चुनावों के ठीक पहले आरडब्ल्यूपीआई की पहल और नेतृत्व में देश में एक तीन माह लम्बी चली, 8600 किलोमीटर, 13 राज्य और 85 से ज़्यादा ज़िलों को कवर करने वाली 'भगतसिंह जनअधिकार यात्रा' का दूसरा चरण भी आयोजित किया गया था जो 10 दिसम्बर 2023 से 3 मार्च 2024 तक चला। देश में फ़ासीवाद-विरोधी माहौल तैयार करने में तमाम प्रगतिशील, जनवादी व सेक्युलर ताक़तें सक्रिय थीं और इस यात्रा ने भी इस माहौल को बनाने में अहम योगदान किया। हमारा यह पूर्वानुमान था कि इस बार मोदी के पक्ष और विपक्ष में जिस प्रकार का ध्रुवीकरण है, उसके मद्देनज़र हमें मिलने वाले वोट पहले के मुकाबले कम हो सकते हैं। मोटा-मोटी हमारा पूर्वानुमान सही था।

उत्तर-पश्चिमी दिल्ली व उत्तर-पूर्वी दिल्ली सीट पर भागीदारी

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी की उम्मीदवार साथी अदिति को उत्तर-पश्चिमी दिल्ली सीट पर 790 वोट मिले और उत्तर-पूर्वी दिल्ली से साथी योगेश को 410 वोट ही मिले। उत्तर-पश्चिमी दिल्ली में एक बहुत बड़ी आबादी ने अदिति और पार्टी के प्रचार को स्वीकार किया हालाँकि यह समर्थन वोटों की संख्या में नहीं झलका। यह पूँजीवादी चुनाव में सम्भव भी नहीं है क्योंकि इस चुनाव में वोट को पैसे, दारू और मुर्गा खिलाकर, जाति-धर्म के आधार पर बाँटकर खरीदा जाता है। एक बहुत बड़ी आबादी यह भी सोचती है कि मज़दूर पार्टी वाले बात तो सही कह रहे हैं लेकिन ये लोग चुनाव में जीतेंगे तो है नहीं, तो अपना वोट "बर्बाद" क्यों किया जाये। लेनिन ने भी कहा था कि वोट जनसमर्थन का सही बैरोमीटर नहीं है और असल में किसी पार्टी को कितना जनसमर्थन प्राप्त है यह जनआन्दोलनों, हड़तालों और पार्टी द्वारा चलाये जनअभियानों में जनता की भागीदारी से तय होता है।

साथ ही यह बात भी ग़ौर करने लायक है कि बवाना औद्योगिक क्षेत्र, शाहाबाद डेरी, भीम नगर व अनेक मज़दूर वर्गीय रिहायशी इलाक़ो में एक बड़ी आबादी का दिल्ली का वोट ही नहीं है। मेहनतकशों की एक आबादी मतदान के दिन भी फैक्टरियों में, घरों में काम कर रही थी। निश्चित ही हमारा प्रचार भी अभी व्यापक नहीं था और हम पूरे निर्वाचन क्षेत्र में नहीं पहुँच पाये। कुल 10 विधानसभा क्षेत्रों में से हम 4 विधानसभा में प्रचार कर पाये जिसमें भी सघन तौर पर हम दो विधानसभाओं के कुछ क्षेत्रों में प्रचार अभियान चला पाये। लेकिन धनबल, बाहुबल, जाति-धर्म की राजनीति के बीच हमने मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र पक्ष को मज़बूती से रखा और एक बड़ी आबादी ने हमें समर्थन भी दिया।

हमें अनेक मज़दूर यूनियनों व जनसंगठनों का भी समर्थन मिला। 'दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन', 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' और 'बवाना औद्योगिक क्षेत्र मज़दूर यूनियन' ने खुलकर हमें समर्थन दिया।

उत्तर-पूर्वी दिल्ली लोकसभा क्षेत्र से भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के उम्मीदवार साथी योगेश खड़े हुए थे। यह राजधानी दिल्ली का सबसे घनी आबादी वाला लोकसभा क्षेत्र है। इस क्षेत्र में अनुमानतः 60 फ़ीसदी मज़दूर आबादी रहती है और इसमें भी लगभग 95 फ़ीसदी ठेका मज़दूर हैं। इस क्षेत्र में कई छोटे-छोटे लघु उद्योग सीलमपुर, जाफ़राबाद, करावल नगर, बुराड़ी, मुस्तफ़ाबाद, मौजपुर, खजूरी इलाकों में हैं। पार्टी का प्रचार भी इस वर्ग पृष्ठभूमि के चलते करावल नगर, खजूरी चौक के आसपास केन्द्रित रहा। RWPI ने मज़दूर आबादी और निम्नमध्यम वर्गीय आबादी के बीच अपने चुनावी प्रचार में ठेका प्रथा समाप्त करने, न्यूनतम मज़दूरी 30,000 रुपये करने और रोज़गार गारण्टी क़ानून पारित करने व अन्य मज़दूरवर्गीय माँगों को ज़ोरदार ढंग से उठाया। पार्टी के उम्मीदवार योगेश को इलाक़े के बादाम मज़दूरों का व्यापक समर्थन मिला लेकिन अधिकतर बादाम मज़दूरों के पास मतदाता पहचान पत्र है ही नहीं। 'करावलनगर मज़दूर यूनियन' और 'दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन' ने लोकसभा चुनाव में हमारा समर्थन किया।

हरियाणा में कुरुक्षेत्र लोकसभा क्षेत्र से भागीदारी

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी ने हरियाणा में कुरुक्षेत्र की सीट से भागीदारी की। हरियाणा में ग़रीब किसानों, खेत मज़दूरों, मनरेगा मज़दूरों, औद्योगिक श्रमिकों और नौजवान आबादी को केन्द्र में रखते हुए समाजवादी कार्यक्रम का लोकसभा क्षेत्र में प्रचार-प्रसार किया गया। हज़ारों की संख्या में पर्चे बाँटे गये, नुक्कड़ सभाएँ और गली-बैठकें आयोजित की गयी। प्रचार अभियान का ज़्यादा ज़ोर कलायत और कैथल विधानसभा क्षेत्रों में केन्द्रित रहा क्योंकि यहाँ पर RWPI के साथी पिछले लम्बे समय से सामाजिक-राजनीतिक काम करते रहे हैं। जनसम्पर्क अभियानों के दौरान शिक्षा-स्वास्थ्य-रोज़गार-आवास-खेती-मज़दूरी आदि से जुड़े बहुत सारे नये पहलू कार्यकर्ताओं की नज़र में आये। कुरुक्षेत्र लोकसभा क्षेत्र में पार्टी का प्रचार अभियान मुख्यतः ग़रीब किसान आबादी, खेतिहर मज़दूरों व मनरेगा मज़दूरों के बीच केन्द्रित रहा। यहाँ से पार्टी के उम्मीदवार रमेश खटकड़ थे। हमारे बेहद सीमित संसाधनों और मुख्य तौर दो विधानसभा तक प्रचार के सीमित रहने के बावजूद हमें 757 मत प्राप्त हुए हैं। ये राजनीतिक वोट हैं, जो आरडब्ल्यूपीआई के कार्यक्रम व विचारधारा के आधार पर दिये गये हैं। पूँजीवादी चुनावों में समर्थन के मतों में रूपान्तरित होने के पीछे बहुत से पहलू काम कर रहे होते हैं, जैसे जातिवाद, धनबल, बाहुबल आदि, जिन्हें जनता की राजनीतिक वर्ग चेतना के स्तरोन्नयन के साथ ही खत्म किया जा सकता है। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस दौरान हम लाखों लोगों तक जनता का क्रान्तिकारी एजेण्डा और कमेरे तबकों के असली मुद्दे ले जाने में कामयाब रहे हैं। निश्चित तौर पर मज़दूर पार्टी को जनता के बीच मज़बूत विकल्प के तौर पर उभरने में अभी समय लगेगा लेकिन जहाँ भी प्रचार टीम गयी लोगों ने पार्टी के एजेण्डे का खुलकर समर्थन किया। आने वाले समय में और व्यापक ढंग से पार्टी के समाजवादी कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार किया जायेगा।

महाराष्ट्र में पुणे लोकसभा सीट से भागीदारी

महाराष्ट्र में आर.डब्लू.पी.आई ने पुणे और मुम्बई (नॉर्थ-इस्ट) इन दो जगहों पर क्रमश: कॉमरेड अश्विनी खैरनार और कॉमरेड बबन ठोके को उम्मीदवारी दी थी। पुणे में शुरुआती दिनों में लगभग एक महीना घर-घर व गली-गली जाकर सघन अभियान चलाया गया, भाजपा की फ़ासीवादी राजनीति का पर्दाफ़ाश किया व मज़दूरों के स्वतन्त्र विकल्प को चुनने की अपील की गयी। यह अभियान मेहनतकशों के इलाक़ों में ही चलाया गया। भाजपा के प्रति जनता में गुस्सा तो साफ़ तौर पर दिख ही रहा था लेकिन भाजपा को हराने की चाहत और "वोट कटने" का डर मेहनतकशों में इतना तीव्र हो गया था कि कई लोगो ने हमारी बात से सहमत होते हुए भी चुनाव न लड़ने के लिए कहा। इससे पता चलता है कि चुनावी राजनीति में भी स्वतन्त्र मज़दूरवर्गीय भूमिका की ज़रूरत का एहसास जनता में अभी कम है। सीमित शक्ति व संसाधन के बावजूद लगभग 50 दिन के अभियान में अंदाज़न एक लाख लोगों तक प्रचार अभियान पहुँचा और लगभग 10,000 लोगों ने आर्थिक सहयोग किया। चुनाव में कुल 415 वोट प्राप्त हुए, जो इस विशेष राजनीतिक परिस्थिति में हुए ध्रुवीकरण के मुताबिक आश्चर्यजनक नहीं था। चुनाव के नतीजे वाले दिन ईवीएम ख़राब हुए, कुछ ईवीएम मशीनों के सील टूटे हुए थे। इसपर साथी अश्विनी द्वारा की गयी आपत्ति के बावजूद आरओ ने कार्यवाई नहीं की। इस दिन भाजपा ने कई काउंटिंग एजेण्ट को भी ख़रीदने की कोशिश की। यह दर्शाता है भाजपा ने चुनाव जीतने के लिए तमाम हथकण्डे अपनाये।

मुंबई (नॉर्थ-इस्ट) में जनता में चलने वाले प्रचार अभियान के प्रभाव और पिछले कुछ दिनों में आर.डब्लू. पी.आई की जनता में बढ़ी हुई पहुँच के डर से तमाम पूँजीवादी पार्टियों ने आरओ पर दवाब बनाकर बबन ठोके का नामांकन रद्द करवा दिया। आरओ ने नाममात्र में तकनीकी ग़लतियों के आधार पर नामांकन को खारिज़ कर दिया, जिसे अन्तिम समय पर सूचित किया गया और उसे ठीक करने की मोहलत भी नहीं दी गयी। इसमें प्रशासन की ओर से पक्षपाती रवैया साफ़ दिख रहा था। आगामी विधानसभा चुनाव में भी इस सीट से मज़दूरपक्षीय उम्मीदवार को खड़ा किया जायेगा और तमाम पूँजीवादी चुनाबबाज़ पार्टियों का पर्दाफ़ाश किया जायेगा।

उत्तर प्रदेश में सन्तकबीरनगर सीट पर भागीदारी

इस सीट पर आरडब्ल्यूपीआई के प्रत्याशी साथी मित्रसेन को 2544 वोट मिले। इस लोकसभा क्षेत्र का विस्तार तीन ज़िलों में है जिसमें अम्बेडकरनगर, गोरखपुर व सन्तकबीरनगर शामिल हैं, जिसे इतने सीमित संसाधनों में कवर कर पाना मुश्किल था। इसमें हम सिर्फ़ आलापुर विधानसभा के भी कुछ ही गाँव में जा सके क्योंकि आलापुर विधानसभा क्षेत्र भी अपने आप में काफ़ी बड़ा क्षेत्र है जहाँ 400 से ज़्यादा गाँव हैं। यह 2544 वोट भी इसी विधानसभा के अलग-अलग गाँवों से हमे मिले हैं। पूरे इलाक़े में छोटी जोत की खेती होती है। साथ ही इलाक़े में तम्बाकू की खेती करने वाले छोटे किसान और खेत मज़दूर भी हैं। जिस ग्रामीण इलाक़े को केन्द्रित करके आरडब्ल्यूपीआई ने चुनाव प्रचार किया, उन गाँवों में लगभग हर परिवार से कोई न कोई सदस्य बाहर जाकर मज़दूरी करता है। सन्तकबीरनगर और आसपास के इलाक़ों में उद्योग-धन्धे नहीं के बराबर हैं। तमाम छोटे-मोटे उद्योग भी बरसों से बन्द पड़े हैं। छोटी-छोटी बीमारियों के इलाज के लिए लोगों को 50-100 किमी की दूरी तय करके गोरखपुर जाना पड़ता है। इलाक़े के जो प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र कभी खुलते भी हैं, वहाँ भी न तो डॉक्टर हैं, न जाँच उपकरण और न ही दवाइयाँ। आरडब्ल्यूपीआई द्वारा उठाये गये शिक्षा, चिकित्सा, रोज़गार और न्यूनतम मज़दूरी के मुद्दों को जनता का व्यापक समर्थन मिला। बहुत-सी महिलाओं ने आरडब्ल्यूपीआई के प्रचार कार्य को आगे बढ़ाने के लिए सभाओं के दौरान सहयोग के डिब्बों में पैसे डाले। बहुत से युवाओं और नागरिकों ने नम्बर दिये। बाज़ारों में प्रचार के दौरान बहुत से रेहड़ी-खोमचा लगाने वालों, सड़क किनारे दुकान लगाने वालों का कहना था कि इस तरह का प्रचार उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। सभी जगहों पर लोगों ने बात सुनने के बाद ख़ुद ही आगे बढ़कर सहयोग किया। आरडब्ल्यूपीआई समाजवादी कार्यक्रम के प्रचार के जिस मुख्य मक़सद को लेकर चुनावों में उतरी थी, उन सभी मुद्दों पर लोगों का बहुत अच्छा समर्थन मिला।

कुल मिलाकर कहें तो सबसे प्रमुख सकारात्मक बात यह है कि इस अभियान के ज़रिये चुनाव के दौरान राजनीतिक तौर पर सक्रिय आबादी के बीच हमने समाजवादी कार्यक्रम का प्रचार-प्रसार किया। यह सिर्फ़ मज़दूर वर्ग तक केन्द्रित नहीं रहा बल्कि आम जनता के हर तबके तक हमारी बात पहुँची। इस प्रचार के ज़रिये पूँजीपति वर्ग की पार्टियों का बेहतरीन भण्डाफोड़ भी किया गया। कुछ क्षेत्रों में हमने मज़दूरों के बीच वालण्टियर कोर भी खड़ी की

(पेज 15 पर जारी)

मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए लोकसभा चुनाव 2024 के नतीजों के मायने

(पेज 1 से आगे)

विशालकाय घपला था जो देश की जनता को अपनी सामूहिक इच्छा को अभिव्यक्त करने, यानी स्वतन्त्र और पारदर्शी तरीक़े से अपने नुमाइन्दे चुनने के जनवादी अधिकार का मखौल बनाता है। इस मसले पर सुप्रीम कोर्ट का रवैया एक बार फिर यही दिखलाता है कि फ़ासीवादी ताक़तों की घुसपैठ किस हद तक न्यायपालिका समेत सभी पूँजीवादी राज्यसत्ता के संस्थानों में हो चुकी है और आज इसके समूचे ढाँचे पर भाजपा और संघ परिवार का कमोबेश नियन्त्रण है। ईवीएम की विश्वसनीयता पर हर तरफ़ से उठने वाले वाजिब सवालों और सौ प्रतिशत वीवीपैट मिलान की माँग को सुप्रीम कोर्ट ने अपने फ़ैसले में ख़ारिज कर दिया। यही नहीं सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों ने लोगों को हिदायत दी और कहा कि जनता का व्यवस्था में "अन्धा अविश्वास" सही नहीं है! यानी व्यवस्था कितनी ही भ्रष्ट, निकम्मी और जनविरोधी क्यों न हो उसके ख़िलाफ़ प्रश्न मत खड़े करो, उसके ख़िलाफ़ आवाज़ मत उठाओ, उसके ख़िलाफ़ बग़ावत मत करो, बस आँख मूँदकर "अन्धा विश्वास" रखो! सुप्रीम कोर्ट की उक्त हिदायत बाइबिल में लिखे हुए उस कथन की याद दिलाती है कि पहले विश्वास करो उसके बाद तुम्हें ईश्वर के चमत्कार अपनेआप नज़र आयेंगे!

बहरहाल, इस बार लोकसभा चुनाव की प्रक्रिया शुरू से ही केन्द्रीय चुनाव आयोग (केचुआ) द्वारा इस प्रकार बनायी गयी थी कि इसका स्पष्ट फ़ायदा भाजपा को पहुँचे। सात चरणों में चुनावों को करवाने की पूरी व्यवस्था ही इसी प्रकार बनायी गयी थी। ईवीएम मशीनें पर कत्तई भरोसा नहीं किया जा सकता है और इसपर उठने वाले सवाल बिलकुल जायज़ हैं – इस बात की पुष्टि एक बार फिर इन चुनावों में हो गयी। कई इलाक़ों से आ चुकी ख़बरों से स्पष्ट है कि ईवीएम के बूते भी चुनाव के नतीजों में हेरफेर हुआ है। यही नहीं, चुनाव आयोग ने पहले दो चरणों के मतदान के आँकड़ों तक को 5 से 7 प्रतिशत तक बढ़ा दिया था!

यह बात सर्वविदित है कि पूँजीवादी चुनावों में धनबल की केन्द्रीय भूमिका होती है। जहाँ तक भाजपा की आर्थिक शक्तिमत्ता का प्रश्न है तो वह पहले ही अन्य सभी पूँजीवादी चुनावी दलों से कई गुना ज़्यादा थी। लेकिन चुनावों से पहले भाजपा ने पूँजीपति वर्ग से इलेक्टोरल ट्रस्टों के घोटाले के ज़रिये हज़ारों करोड़ का चन्दा बटोरकर और फिर इलेक्टोरल बॉण्ड के महाघोटाले के द्वारा अपनी आर्थिक ताक़त को और भी प्रचण्ड रूप से बढ़ा लिया था। इसके अलावा चुनावों से पहले प्रमुख पूँजीवादी विपक्षी दल कांग्रेस के खातों को सील कर उसे आर्थिक रूप से पंगु बना दिया गया था; दिल्ली के मुख्यमन्त्री अरविन्द केजरीवाल समेत आम आदमी पार्टी के शीर्ष नेतृत्व के अच्छे-ख़ासे हिस्से को जेल में डाल दिया गया था; झारखण्ड के मुख्यमंत्री हेमन्त सोरेन सहित अन्य कई विपक्षी पार्टियों के नेता जेल में थे या उन पर जेल जाने की तलवार लटकाकर रखी गयी थी; कई विपक्षी पार्टियों को धनबल व एन्फोर्समेण्ट डायरेक्टरेट, आयकर विभाग व सीबीआई जैसी केन्द्रीय एजेंन्सियों का इस्तेमाल करके तोड़ दिया गया था और कइयों को भाजपा की बी-टीम में तब्दील कर दिया गया था। इसके साथ ही समूचा गोदी मीडिया शुरू से ही भाजपा और मोदी के पक्ष में झूठे प्रचार कर राय बनाने के प्रयासों में लगा हुआ था और सिरे से झूठे एक्ज़िट पोल देकर गणना के दिन हेराफेरी के ज़रिये जनादेश के चुराये जाने के लिए माहौल तैयार करने में लगा हुआ था। इतना तय है कि जो नतीजा आया भी है, उससे मोदी की अपराजेयता का पूँजीवादी मीडिया द्वारा अरबों रुपये बहाकर पैदा किया गया मिथक ध्वस्त हो गया है। ख़ुद वाराणसी में मोदी के जीत का अन्तर पिछले दो चुनावों के मुक़ाबले काफ़ी कम हो गया। 370 या 400 तो दूर 240 सीटों तक पहुँचने में ही भाजपा का दम निकल गया, वह भी तब जबकि सारा मीडिया, सारी सरकारी मशीनरी, चुनाव आयोग, और पूँजीपति वर्ग का धनबल उसके पक्ष में था।

लोकसभा चुनाव के इस नतीजे का मुख्य कारण यह है कि बेरोज़गारी, महँगाई, भयंकर भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता से जनता त्रस्त थी और भाजपा की जनविरोधी और अमीरपरस्त नीतियों की वजह से उसकी जनता में भारी अलोकप्रियता थी। यही वजह थी कि आनन-फ़ानन में अपूर्ण राम मन्दिर के उद्घाटन करवाने का भी भाजपा को कोई फ़ायदा नहीं मिला और फ़ैज़ाबाद तक की सीट भाजपा हार गयी, जिसमें अयोध्या पड़ता है।

उत्तर प्रदेश के नतीजों से कई लोगों को काफ़ी हैरानी हुई हालाँकि उपरोक्त कारणों की वजह से भाजपा की अलोकप्रियता वहाँ स्पष्ट तौर पर मौजूद थी। साथ ही, दो ऐसे राज्यों में जहाँ क्षेत्रीय पूँजीपति वर्ग के ऐसे नुमाइन्दे थे, जो भाजपा के ख़िलाफ़ हमेशा अवसरवादी चुप्पी साधे रहते थे और केन्द्र में अक्सर भाजपा की मदद किया करते थे, वहाँ से उनका पत्ता ही साफ़ हो गया। ओडिशा में नवीन पटनायक की बीजद और आन्ध्रप्रदेश में जगनमोहन रेड्डी की वाईएसआर कांग्रेस। केरल में भाजपा अपना खाता खोलने में कामयाब रही, जो माकपा की सामाजिक-जनवादी व संशोधनवादी राजनीति के कुकर्मों का ही नतीजा है। बिहार और कर्नाटक के नतीजे कइयों के लिए चौंकाने वाले थे। लेकिन इनमें से ज़्यादा लोग वे हैं जो भाजपा की फ़ासीवादी राजनीति के आधार को कम करके आँकते हैं। मध्यप्रदेश, गुजरात, उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश जैसे प्रदेशों में भाजपा ने लगभग सभी सीटें जीतीं हैं। निश्चित ही, इसमें ईवीएम और प्रशासनिक मशीनरी द्वारा चुनावी हेरफेर की एक भूमिका है, लेकिन उसके बिना भी इन राज्यों में भाजपा अधिकांश सीटें जीतने की स्थिति में थी। यह सच है कि देश के पैमाने पर भाजपा की सीटों में भारी कमी आयी है, लेकिन अभी भी वह सबसे बड़ी पार्टी है। विशेष तौर पर **पिछले चार दशकों में संघ परिवार व भाजपा ने जिस व्यवस्थित तरीक़े से समाज के एक विचारणीय हिस्से में साम्प्रदायिक आम सहमति का निर्माण किया और टुटपुँजिया वर्गों के प्रतिक्रियावादी फ़ासीवादी आन्दोलन को खड़ा किया है, यह उसी का नतीजा है। यह इतनी आसानी से समाप्त नहीं होने वाला है और दीर्घकालिक मन्दी के दौर में और क्रान्तिकारी राजनीति के प्रभुत्वशाली न बनने की सूरत में यह स्थिति बदलने वाली भी नहीं है, चाहे फ़ासीवादी शक्तियाँ सरकार में रहें या न रहें।**

इक्कीसवीं सदी के फ़ासीवाद की विशिष्टता ही यही है कि हिटलर और मुसोलिनी के दौर के समान आज फ़ासीवादी शक्तियों के लिए चुनावों को, संसद-विधानसभाओं को खुले तौर पर भंग करने की आवश्यकता नहीं है। कहने के लिए कुछ नागरिक अधिकार भी बेहद सीमित और कागज़ी तौर पर मौजूद हैं। लेकिन समाज और राज्यसत्ता में पिछले कई दशकों के दौरान एक लम्बी प्रक्रिया में फ़ासीवादी संघ परिवार और भाजपा ने अपनी गहरी पैठ के ज़रिये इस देश के पूँजीवादी लोकतन्त्र की संस्थाओं, प्रक्रियाओं आदि और समूची पूँजीवादी राज्यसत्ता की मशीनरी पर अन्दर से क़ब्ज़ा कर लिया है, यानी उन्हें *टेक ओवर* कर लिया है। दूसरे शब्दों में कहें तो पूँजीवादी लोकतन्त्र का बस खोल ही बचा है, अन्तर्वस्तु कब की क्षरित हो चुकी है। इसलिए फ़ासीवादी ताक़तें यदि सरकार से बाहर भी हो जायें तब भी समाज और राज्यसत्ता में उनकी दखल बनी रहेगी। वजह यह है कि दीर्घकालिक मन्दी के दौर में और आम तौर पर आज के नवउदारवादी पूँजीवाद के दौर में फ़ासीवादी शक्तियाँ पूँजीपति वर्ग और पूँजीवाद की स्थायी आवश्यकता हैं, चाहे वे सरकार में रहें या न रहें। साथ ही, फ़ासीवादी शक्तियाँ भी आम तौर पर दो कारणों से आपवादिक स्थितियों को छोड़कर पूँजीवादी लोकतन्त्र के खोल को बरक़रार रख फ़ासीवादी प्रोजेक्ट को आगे बढ़ाने का रास्ता चुनेंगी। पहला कारण : आज के नवउदारवादी पूँजीवाद के दौर में पूँजीवादी राज्यसत्ता में उतनी भी जनवादी सम्भावनाएँ नहीं बचीं हैं, जितनी बीसवीं सदी के शुरुआती दौर में बची थीं; दूसरा कारण : फ़ासीवादियों ने भी बीसवीं सदी के अपने पुरखों की ग़लतियों से सीखा है और यह नतीजा निकाला है कि पूँजीवादी लोकतन्त्र के खोल को फेंकने के साथ यह निर्धारित हो जाता है कि उनकी नियति भी देर-सबेर पूर्ण विध्वंस के रूप में सामने आती है, क्योंकि उसके बाद और कोई विकल्प बचता भी नहीं है। नतीजतन, राज्य का फ़ासीवादीकरण आज आम तौर पर एक ऐसी परियोजना में तब्दील हो चुका है, जो कभी पूर्णता पर नहीं पहुँचेगी बल्कि सतत् जारी रहेगी, यानी हमेशा एक '*ऑनगोइंग प्रोजेक्ट*' बनी रहेगी। इसलिए फ़ासीवाद राज्यसत्ता और समाज में एक प्रतिक्रियावादी धुर जन-विरोधी शक्ति के तौर पर बना रहेगा, चाहे वह सरकार में रहे या न रहे; दूसरा, वह दीर्घकालिक मन्दी के दौर में बार-बार पहले से अधिक आक्रामकता के साथ सरकार में पहुँचेगा क्योंकि हर दिखावटी कल्याणवाद के दौर के बाद नवउदारवादी नीतियों को और अधिक तानाशाहाना तरीक़े से आगे बढ़ाना पूँजीपति वर्ग की ज़रूरत होगी।

मौजूदा राजनीतिक परिदृश्य के मद्देनज़र पैदा हो सकने वाली भावी सम्भावनाएँ

बहरहाल, चुनावों में भाजपा द्वारा अपने बूते स्पष्ट बहुमत न पाने और एक गठबन्धन सरकार चलाने की मजबूरी के चलते कई तात्कालिक सम्भावनाएँ पैदा होती हैं। पहली सम्भावना यह है कि मोदी सरकार नीतीश कुमार व चन्द्रबाबू नायडू के समर्थन के बूते, तमाम विवादास्पद सवालों पर समझौते करके अपने अस्तित्व को बचाये रखे। इस सूरत में फ़ासीवादी हमलों की तीव्रता और व्यापकता में मात्रात्मक कमी आ सकती है। कुछ मुद्दों पर मसलन, सीएए-एनआरसी, अग्निवीर, आदि पर जद(यू) और तेलुगु देशम पार्टी ने दबे स्वर में आपत्तियाँ खड़ी करना शुरू कर दिया है जो आगे चलकर यदि मुखर हुईं तो मोदी-शाह जोड़ी और भाजपा के लिए कुछ असुविधाएँ पैदा कर सकती हैं। अगर मोदी-शाह फ़ासीवादी एजेण्डा के इन केन्द्रीय मुद्दों पर समझौता करने को तैयार होते हैं और भविष्य में सरकार को बचाये रखने के लिए अन्य समझौते भी करते हैं, तो मोदी की अब तक बनायी गयी फ़ासीवादी छवि को अपूरणीय क्षति होगी और उसे दोबारा किसी नये तरीक़े से खड़ा कर पाना भी काफ़ी मशक्क़त का काम होगा। तात्कालिक तौर पर, फ़ासीवादी सरकार के धुर फ़ासीवादी तेवर और मोदी का *'फ्यूरर-कल्ट'* कमज़ोर पड़ेंगे। इसका अनिवार्यत: यह अर्थ नहीं होगा कि फ़ासीवादी सरकार की आर्थिक नवउदारवादी नीतियों में कोई गुणात्मक कमी आयेगी क्योंकि इस पर सभी पूँजीवादी दलों की आम तौर पर वैसे भी सहमति ही है। न ही यह ज़रूरी है कि ज़मीनी स्तर पर फ़ासीवादी गुण्डा-वाहिनियों के रवैये में कोई गुणात्मक अन्तर आ जायेगा। विशेष तौर पर, सरकार की मज़दूरों-मेहनतकशों के शोषण की दर को बढ़ाने व उनके दमन-उत्पीड़न को बढ़ाने के लिए बनाये जाने वाली नीतियों में कोई गुणात्मक अन्तर नहीं आयेगा। अभी से ही मज़दूर-विरोधी लेबर कोड्स को लागू करने की बातें ज़ोर पकड़ने लगी हैं। लेकिन सम्भवतः तात्कालिक तौर पर जनवादी-नागरिक अधिकारों व विशेष तौर पर अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर फ़ासीवादी हमलों की रफ़्तार और दर में कमी आ सकती है। हालाँकि इसकी सम्भावना भी बेहद कम है। बताते चलें कि नयी आपराधिक दण्ड संहिताएँ जुलाई से अमल में आ जायेंगी।

दूसरी सम्भावना यह है कि गठबन्धन राजनीति करने की क्षमता, अनुभव और आदत से वंचित मोदी-शाह गठबन्धन सरकार के बनने के कुछ समय बाद ही राज्यसत्ता की मशीनरी में आन्तरिक फ़ासीवादी पकड़ के बूते साज़िशाना तरीक़े से 'राइख़स्टाग में आग' जैसी किसी घटना को अंजाम दे सकते हैं, जिसे बहाना बनाकर गठबन्धन सरकार रहते ही सुरक्षा का हौव्वा पैदा कर उस पर अपने पूर्ण नियन्त्रण को स्थापित करने का प्रयास कर सकते हैं। ऐसे प्रयास सहजता से सफल हो जायें, यह ज़रूरी नहीं है। उस सूरत में वे कम-से-कम तात्कालिक तौर पर कोई आपातकाल जैसी स्थिति थोप सकते हैं। उस सूरत में भी वे कोई आपवादिक कानून लाकर हिटलर व मुसोलिनी के समान स्थायी रूप में बुर्जुआ जनवाद के खोल का परित्याग करेंगे और स्थायी व औपचारिक तौर पर बुर्जुआ चुनावों, विधानसभाओं व संसद को भंग करेंगे, इसकी गुंजाइश नगण्य होगी। इस प्रकार का कोई अस्थायी क़दम केवल इस उम्मीद में उठाया जा सकता है कि स्थिति को पूर्ण रूप से नियन्त्रण में लाया जा सके। कोई ज़रूरी नहीं है कि इसमें भी वे कामयाब हों।

तीसरी सम्भावना यह है कि मोदी-शाह गठबन्धन सरकार चलाने के बावजूद फ़ासीवादी मंसूबों को पूरा करने के लिए उसी आक्रामकता के साथ काम करें और गठबन्धन के सहयोगियों द्वारा टाँग खींचे जाने पर यह कहकर इस्तीफ़ा दे सकते हैं कि "घुसपैठियों और ज़्यादा बच्चे पैदा करने वालों की हिमायत करने वाले हमें "राष्ट्रसेवा" व "राष्ट्रसुरक्षा" के

(पेज 9 पर जारी)

भावी सम्भावनाएँ, भावी चुनौतियाँ और हमारे कार्यभार

(पेज 8 से आगे)

लिए निर्णायक कदम नहीं उठाने दे रहे और इसलिए मैं इस्तीफ़ा दे रहा हूँ और राष्ट्रपति से मध्यावधि चुनावों की माँग कर रहा हूँ।" इसके बाद, फ़ासीवादी ताक़तें नये सिरे से देश में साम्प्रदायिक और अन्धराष्ट्रवादी उन्माद की लहर पैदा करने की कोशिशें कर सकती हैं और नयी आक्रामकता और ताक़त के साथ सरकार में पहुँचने के मंसूबे बाँध सकती हैं। यहाँ भी, यह कोई ज़रूरी नहीं कि वे कामयाब ही होंगी। उनकी सफलता या असफलता अन्य कई कारकों पर निर्भर करेगी।

चौथी सम्भावना यह है कि कुछ समय बाद अपने विशिष्ट हितों के मद्देनज़र मोदी-शाह सरकार को पर्याप्त तंग करने के बाद नीतीश व चन्द्रबाबू समर्थन वापस ले लें और अपना समर्थन इण्डिया ब्लॉक को दे दें, जो कुछ अन्य छोटे दलों व निर्दलीयों के समर्थन से सरकार बना लें। उस सूरत में कई उपसम्भावनाएँ पैदा होंगी। पहला, यह सरकार अपना कार्यकाल पूरा करे और दूसरा, वह बीच में ही गिर जाये और या तो फिर से भाजपा-नीत कोई सरकार बने या फिर मध्यावधि चुनाव हों। दोनों ही सूरत में फिर से नये ज़ोर के साथ और सम्भवत: किसी नये *'फ्यूरर'* के साथ फ़ासीवादी उभार होने या गडकरी जैसे किसी फ़ासीवादी नेता के नेतृत्व में फ़ासीवादी सरकार बनने या फिर किसी सेण्ट्रिस्ट गठबन्धन की सरकार बनने की गुंजाइश बनी रहेगी। इनमें से कौन-सी उपसम्भावना असलियत में तब्दील होगी, उसके बारे में अभी कोई अटकल लगाना न तो सम्भव है और न ही उपयोगी। उस समय तक ठोस वर्ग राजनीतिक स्थितियों में क्या परिवर्तन होंगे, प्रगति और प्रतिक्रिया की शक्तियों में सापेक्षिक सन्तुलन किस प्रकार का होगा, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विशिष्ट ठोस हालात कैसे होंगे, बुर्जुआ राजनीति के आन्तरिक समीकरण क्या रूप ग्रहण कर रहे होंगे, विश्व पूँजीवाद के समीकरण क्या रूप ले रहे होंगे, यह इन सारे कारकों पर निर्भर करेगा। लेकिन अगर कोई सेण्ट्रिस्ट बुर्जुआ गठबन्धन भी सरकार बनाये और दिखावटी कल्याणवाद के पाँच साल और आ जायें तो भी यह दीर्घकालिक संकट के दौर में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के आन्तरिक अन्तरविरोधों का सन्धिबिन्दु उसे एक राजनीतिक संकट की ओर ले जायेगा और किसी न किसी रूप में फिर से एक नये फ़ासीवादी उभार की ज़मीन तैयार करेगा। यह किस रूप में होगा उसका अनुमान भी अभी नहीं लगाया जा सकता है।

लेकिन इतना स्पष्ट है कि चुनावों में फ़ासीवाद का कमज़ोर होना या उसकी चुनावी हार होना व उसका सरकार से बाहर जाना फ़ासीवाद की निर्णायक हार नहीं है। इक्कीसवीं सदी में फ़ासीवाद की विशिष्टताओं को जो लोग समझते हैं, वे जानते हैं कि सरकार से बाहर होने के बावजूद राज्यसत्ता और समाज में फ़ासीवाद ने पिछले सात और विशेष तौर पर चार दशकों में इस कदर आन्तरिक पकड़ बनायी है, इस कदर आन्तरिक कब्ज़ा किया है, कि उनकी राज्यसत्ता व समाज दोनों में ही पकड़ बनी रहेगी और दीर्घकालिक संकट के समूचे दौर में वे बार-बार सरकार में भी पहले से ज़्यादा आक्रामकता के साथ वापसी करते रहेंगे। आज फ़ासीवादी शक्तियाँ बुर्जुआ जनवाद के खोल का परित्याग नहीं करेंगी क्योंकि उन्हें इसकी कोई ज़रूरत नहीं है और साथ ही, बीसवीं सदी के फ़ासीवाद के प्रयोगों से आज के फ़ासीवादी सबक लेते हुए इस बात को समझते हैं कि यह उनके लिए बेहतर विकल्प नहीं है।

हमारे समक्ष उपस्थित कार्यभार

उपरोक्त तात्कालिक सम्भावनाओं के मद्देनज़र और दीर्घकालिक तौर पर फ़ासीवाद को फ़ैसलाकुन शिक़स्त देने के लिए आज के दौर में फ़ासीवाद के विरुद्ध मज़दूर वर्ग की रणनीति और आम रणकौशल क्या हो, यह तय करना सबसे ज़्यादा ज़रूरी है।

सबसे पहला कार्यभार जो आज मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकशों के समक्ष उपस्थित है वह है देश के पैमाने पर एक नयी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी का निर्माण और गठन करना। अगर हम वास्तविक अर्थों में फ़ासीवाद को निर्णायक तौर परास्त करना चाहते हैं तो इस काम की गम्भीरता को हमें तत्काल समझना होगा। कम्युनिस्ट पार्टी सर्वहारा वर्ग के संघर्ष को संगठित करने का मुख्यालय होती है, यह उसके रणनीति-निर्माण, रणकौशल-निर्माण का केन्द्र होती है। इसके विचारधारात्मक व राजनीतिक नेतृत्व के बिना सर्वहारा वर्ग अपने आपको एक राजनीतिक वर्ग के रूप में संगठित नहीं कर सकता है। दूसरे शब्दों में, वह केवल अपने विशिष्ट लघुकालिक आर्थिक हितों के बारे में ही सोच सकता है और नतीजतन उसका संघर्ष अर्थवादी व ट्रेडयूनियनवादी संघर्षों से आगे नहीं जा सकता है। जब मज़दूर वर्ग अर्थवाद, अराजकतावाद व अराजकतावादी-संघाधिपत्यवाद के दायरों में सीमित होकर वेतन-भत्तों की लड़ाइयों तक ही सीमित रह जाता है, तो वह बाक़ी मेहनतक़श जनता, जिसमें कि टुटपुँजिया वर्गों का भी एक विचारणीय हिस्सा शामिल होता है, में अपनी राजनीतिक लाइन के वर्चस्व को स्थापित करने में नाक़ामयाब हो जाता है और उसका राजनीतिक नेतृत्व अपने हाथों में नहीं ले पाता। ऐसे में, मेहनतकश जनता के व्यापक जनसमुदायों में बुर्जुआ वर्ग की विचारधारा व राजनीतिक लाइन वर्चस्वकारी बने रहते हैं और वह बुर्जुआ वर्ग के ही नेतृत्व में चलते हैं। ऐसे में, राजनीतिक वर्ग संघर्ष में सर्वहारा वर्ग कभी विजयी नहीं हो सकता है। हमें याद रखना चाहिए कि सर्वहारा वर्ग सबसे क्रान्तिकारी वर्ग होता है, लेकिन वह एकमात्र क्रान्तिकारी वर्ग नहीं होता और वह अकेले इतिहास नहीं बनाता है। दूसरी ओर, यह व्यापक मेहनतकश जनता है जो इतिहास बनाती है, लेकिन वह बिना सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व के इतिहास नहीं बना सकती। सर्वहारा वर्ग अपनी हिरावल पार्टी के बिना व्यापक जनसमुदायों को नेतृत्व नहीं दे सकता है।

फ़ासीवादी विचारधारा भी एक बुर्जुआ विचारधारा है; फ़ासीवादी राजनीति एक बुर्जुआ राजनीति है। वह भी व्यापक जनसमुदायों में अपने वर्चस्व को स्थापित करने के लिए सतत् सक्रिय रहती है। अगर देश के पैमाने पर कोई क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी मौजूद नहीं होगी, तो वह व्यापक जनसमुदायों के बीच फ़ासीवाद के विरुद्ध सुसंगत और सुनियोजित तरीक़े से विचारधारात्मक व राजनीतिक संघर्ष को संगठित नहीं कर सकती इसलिए दूरगामी लेकिन सबसे आवश्यक कार्यभार है देश के पैमाने पर एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी का निर्माण। यह सच है कि यह कार्यभार तत्काल नहीं पूरा हो सकता है और इस रूप में यह एक दूरगामी कार्यभार कहला सकता है। लेकिन इसे कत्तई कालिक अर्थों में व्याख्यायित नहीं किया जाना चाहिए। कालिक अर्थों में इस कार्यभार को पूरा करने के लिए तत्काल युद्धस्तर पर जुटना होगा। निश्चित तौर पर, यह फ़ासीवाद के विरुद्ध संघर्ष का ही नहीं बल्कि आम तौर पर पूँजीवादी व्यवस्था को नष्ट करने और एक नयी समाजवादी व्यवस्था को स्थापित करने के लिए ज़रूरी आम कार्यभार है। लेकिन फ़ासीवाद-विरोधी संघर्ष में यह कार्यभार एक विशेष प्रासंगिकता ग्रहण कर लेता है।

दूसरा सबसे अहम कार्यभार है जनता के रोज़मर्रा के ठोस मुद्दों पर ठोस कार्यक्रम और ठोस नारों के साथ जुझारू जनान्दोलनों को संगठित करना। अपने आप में यह फ़ासीवाद को केवल तात्कालिक चुनौती ही दे सकता है क्योंकि अलग-अलग बिखरे जनान्दोलनों से फ़ासीवाद अन्तत: निपटने का रास्ता तलाश सकता है। लेकिन एक क्रान्तिकारी पार्टी की मौजूदगी की स्थिति में इन जनान्दोलनों को एक साझा राजनीतिक कार्यक्रम देकर एक लड़ी में पिरोया जा सकता है और उन्हें सामान्य क्रान्तिकारी राजनीतिक आन्दोलन का स्वरूप दिया जा सकता है, जिसके नेतृत्व में क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग हो। ये दोनों कार्यभार एक-दूसरे से नज़दीकी से जुड़े हुए हैं और इन्हें साथ-साथ ही निभाया जा सकता है। ये जुझारू जनान्दोलन फ़ासीवादी शक्तियों के लिए एक चुनौती बनते हैं, चाहे वे सरकार में हों या न हों। वजह यह कि जनता के ठोस मुद्दों पर ठोस पूँजीवाद-विरोधी कार्यक्रम व नारों के साथ खड़े किये गये जनान्दोलन फ़ासीवादी राजनीति की जड़ों में मट्ठा डालने का काम करते हैं। फ़ासीवादी राजनीति की विशिष्टता ही यह होती है कि वह वास्तविक वर्ग अन्तरविरोधों को सही तरीक़े से और सही रूप में अभिव्यक्त नहीं होने देती है और उन्हें किसी न किसी सामाजिक कट्टरपन्थी विचारधारा की चाशनी में डुबो देती हैं, मसलन, नस्लवाद, साम्प्रदायिकता, प्रवासी-विरोध इत्यादि। जब व्यापक जनसमुदाय अपने जीवन की ठोस समस्याओं, जैसे कि महँगाई, बेरोज़गारी, बेघरी, भुखमरी, कुपोषण, आर्थिक व सामाजिक असुरक्षा, के लिए ज़िम्मेदार असली कारण, यानी पूँजीवाद को समझते हैं और पूँजीपति वर्ग और समूची पूँजीवादी व्यवस्था को कठघरे में खड़ा करते हैं, तो वे समाज में मौजूद वर्ग अन्तरविरोधों की अपेक्षाकृत सही समझदारी बनाते जाते हैं। केवल इन जनसंघर्षों के ज़रिये वे समझते हैं कि असली दुश्मन कौन है और लड़ना किसके ख़िलाफ़ है। यह फ़ासीवादी राजनीति के लिए ज़मीनी स्तर पर सबसे बड़ी चुनौती पैदा करता है।

इसके अलावा, आज देश के पैमाने पर क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट ताक़तों को आपस में फ़ासीवाद विरोधी मज़दूर वर्ग का संयुक्त मोर्चा संगठित करना चाहिए। फ़ासीवादी हमलों के बरक्स मुद्दा-आधारित मोर्चे सामाजिक-जनवादियों, सुधारवादी संगठनों, और यहाँ तक कि कुछ मसलों पर अन्य ग़ैर-फ़ासीवादी बुर्जुआ दलों के साथ भी बनाये जा सकते हैं। लेकिन जब हम मुद्दा-आधारित विशिष्ट संयुक्त मोर्चे के बजाय *सामान्य फ़ासीवाद-विरोधी मोर्चे* की बात करते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि आज के दौर में सभी ग़ैर-फ़ासीवादी ताक़तों के बीच कोई पॉप्युलर फ्रण्ट जैसा संयुक्त मोर्चा बनाना कारगर रणनीति नहीं होगा। बीसवीं शताब्दी की तुलना में आज की स्थितियाँ बिल्कुल भिन्न हैं और उस दौर में भी वह हर स्थिति के लिए कोई कारगर रणनीति नहीं थी। पहली बात तो यह है कि बुर्जुआ वर्ग का कोई हिस्सा आज वैसी जनवादी सम्भावनासम्पन्नता नहीं रखता है, कि वह फ़ासीवाद-विरोधी जुझारू संघर्ष में सक्रिय हिस्सेदारी करे। उल्टे, यदि वह किसी मोर्चे का अंग बनता भी है तो वह फ़ासीवाद-विरोधी संघर्ष को हमेशा बुर्जुआ क़ानूनी दायरे के भीतर क़ैद रखने का प्रयास करेगा। कोई भी संघर्ष जो इन सीमाओं का सम्मान नहीं करता है, वह उसे बहुत डराता है। और विशेष तौर पर नवउदारवादी दौर का बुर्जुआ वर्ग तो इससे बुरी तरह से भयाक्रान्त रहता है। दूसरी बात यह कि सामाजिक-जनवादी पार्टियाँ अपने आप में फ़ासीवाद के उभार में योगदान करती हैं और आज फ़ासीवाद-विरोधी रणनीति के नाम पर वे बुर्जुआ वर्ग की पार्टियों की ही गोद में बैठी हुई हैं। उनके पास कोई स्वतन्त्र सर्वहारा रणनीति नहीं है और हो भी नहीं सकती है। इसलिए जहाँ तक सामान्य फ़ासीवाद-विरोधी संयुक्त मोर्चे का सवाल है, तो आज ऐसा प्रभावी मोर्चा केवल क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट संगठनों व प्रगतिशील रैडिकल व्यक्तियों के बीच ही बन सकता है। उसमें बुर्जुआ या सामाजिक-जनवादी शक्तियों की कोई जगह नहीं हो सकती। अगर ऐसा नहीं होगा, तो फ़ासीवाद-विरोधी सुसंगत व जुझारू साझा संघर्ष संगठित किया ही नहीं जा सकता है।

इन तीन आम राजनीतिक कार्यभारों के अलावा विशिष्ट तौर पर क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट शक्तियों के भी कुछ विशिष्ट दूरगामी व तात्कालिक कार्यभार बनते हैं। **कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों का पहला कार्यभार** मज़दूर मोर्चे पर है। यह कार्यभार है मज़दूर आन्दोलन के भीतर संशोधनवाद और सामाजिक-जनवादी राजनीति, अराजकतावादी व अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी राजनीति के विरुद्ध समझौताविहीन संघर्ष चलाना। इन राजनीतिक प्रवृत्तियों की विशिष्टता होती है मज़दूर वर्ग के भीतर अर्थवाद और ट्रेडयूनियनवाद को स्थापित करना और साथ ही उनमें एक हिरावल पार्टी की आवश्यकता को खुले या छिपे रूप में नकारना। सामाजिक-जनवाद व संशोधनवाद मज़दूर आन्दोलन को और समूचे मज़दूर वर्ग को अपने नफ़े-नुक़सान को महज़ आर्थिक तौर पर नापना सिखाते हैं। वे वेतन-भत्ते की लड़ाई को सर्वोपरि बना देते हैं और राजनीतिक प्रश्न उठाने, यानी, सत्ता का प्रश्न उठाने की मज़दूर वर्ग की क्षमता को कुन्द करते हैं। दूसरे शब्दों में, वे व्यवस्थित तरीक़े से मज़दूर वर्ग को राजनीतिक प्रश्न उठाने में अक्षम बनाते हैं। जब मज़दूर केवल आर्थिक नफ़े-नुक़सान को ही सर्वोपरि मानता है, वेतन-भत्ते की लड़ाई को ही अपने संघर्ष का क्षितिज मानता है तो वह व्यापक जनसमुदायों का नेतृत्व हासिल करने की क्षमता खोता जाता है और नतीजतन, व्यापक जनसमुदायों के बीच किसी न किसी बुर्जुआ विचारधारा व राजनीतिक लाइन का बोलबाला होता है। नतीजतन,

(पेज 10 पर जारी)

मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए लोकसभा चुनाव 2024 के नतीजों के मायने

(पेज 9 से आगे)

फ़ासीवादी उभार के दौर में व्यापक जनसमुदायों में से विशेष तौर मध्यवर्ग के विभिन्न संस्तर, यानी टुटपुँजिया वर्ग, फ़ासीवादी प्रतिक्रिया की ओर जाते हैं। इसलिए यदि मज़दूर वर्ग को एक राजनीतिक वर्ग के तौर पर संगठित और संघटित होना है तो उसे अर्थवाद, ट्रेडयूनियनवाद और अराजकतावाद व अराजकतावादी-संघाधिपत्यवाद जैसी आत्मघाती प्रवृत्तियों को मज़दूर आन्दोलन के बीच से उखाड़ फेंकना होगा और इसके लिए क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों को सतत् संघर्ष करना होगा।

कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों का दूसरा कार्यभार है टुटपुँजिया आबादी के व्यापक जनसमुदायों के बीच सघन और व्यापक क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार और संगठन के काम को करना। विशेषकर इसके वे हिस्से जो उजरती श्रम करते हैं और वेतनभोगी हैं और इसके निचले हिस्से जो अपने व अपने पारिवारिक श्रम के आधार पर छोटा-मोटा धन्धा करते हैं, उनमें कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शक्तियों को अपने प्रचार व संगठन को कुशलता के साथ संगठित करना चाहिए। ये ही वे वर्ग हैं जो पूँजीवादी समाज में न तो पूरी तरह आबाद होते हैं और न ही पूरी तरह बरबाद। ये ही वे वर्ग हैं जो आर्थिक संकट के दौर में सर्वहाराकरण का शिकार होते हैं या सर्वहाराकरण का ख़तरा इनके सिर पर मण्डराता है। ये ही वे वर्ग हैं जो इस सतत् आर्थिक व सामाजिक असुरक्षा में जीते हुए लगातार एक प्रकार के गुस्से और चिड़चिड़ाहट में जीते हैं। यदि इनके जीवन की समस्याओं के असली गुनहगार, यानी पूँजीवादी व्यवस्था को इनके समक्ष व्यवस्थित तरीक़े से बेनक़ाब किया जाये, एक पूँजीवादी समाज में इन मध्यवर्गों की नियति के बारे में इन्हें बताया जाये और इन्हें यह समझाया जाये कि यदि वे आर्थिक व सामाजिक असुरक्षा से मुक्त जीवन चाहते हैं जिसमें उन्हें शिक्षा, रोज़गार, सुरक्षा और निश्चितता प्राप्त हो, तो उन्हें समाजवादी व्यवस्था के लिए और पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ लड़ना होगा; तात्कालिक रूप से, उन्हें रोज़गार के अधिकार को बुनियादी अधिकार बनाने, अप्रत्यक्ष करों की व्यवस्था को समाप्त करने, प्रगतिशील कराधान प्रणाली को लागू करवाने, भोजन, चिकित्सा व आवास को बुनियादी अधिकार बनाने और समान व निशुल्क शिक्षा को बुनियादी अधिकार बनाने के लिए संघर्ष करना होगा। व्यापक निम्नमध्यवर्ग और मध्यम मध्यवर्ग की आबादी को इन सवालों पर संगठित करना फ़ासीवादी शक्तियों पर एक भारी चोट करेगा। लेकिन सिर्फ इन ठोस भौतिक मसलों पर उन्हें गोलबन्द और संगठित करना ही काफ़ी नहीं होगा। ये वर्ग ही होते हैं जो तमाम पूँजीवादी विचारधाराओं की गिरफ़्त में होते हैं इसलिए इनके बीच विचारधारात्मक आधार पर भी क्रान्तिकारी प्रचार को संगठित करने की आवश्यकता है।

निम्न व मध्यम मध्यवर्ग के विचारणीय हिस्से को क्रान्तिकारी शक्तियाँ अपने पक्ष में कर सकती हैं और उन्हें करना ही होगा। फ़ासीवादी इस वर्ग की विशिष्ट स्थिति का इस्तेमाल कर इन्हें जीतने के लिए इनके सामने एक गौरवशाली अतीत का मिथक खड़ा करते हैं (अतीत का कोई कल्पित रामराज्य) जिसमें सारी समस्याओं का समाधान हो जाता है। वास्तव में, ऐसा कोई अतीत कभी था ही नहीं। लेकिन आम तौर पर जब हमारे देश में कम्युनिस्ट इस प्रचार का जवाब देते हैं तो वे समूचे प्राचीन भारत के इतिहास और समाज पर अपना दावा छोड़ देते हैं और इस प्रकार फ़ासीवादियों को उस पर अपना दावा स्थापित करने का मौक़ा देते हैं। इसकी जगह कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को प्राचीन भारत से लेकर मध्यकालीन और आधुनिक भारत तक की प्रगतिशील, भौतिकवादी और तार्किक व वैज्ञानिक परम्पराओं पर अपना दावा ठोंकना चाहिए।

इसके अलावा, क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों को अपने प्रचार में फ़ासीवादियों की नकली देशभक्ति और उनके राष्ट्रवाद को पूरी तरह से बेनक़ाब करना चाहिए। फ़ासीवादी राजनीति राजनीति के सौन्दर्यीकरण पर आधारित होती है। वे 'चाल-चेहरा-चरित्र' का गुणगान करते हैं, अपनी अचूक छवि निर्मित करते हैं जो एक नैतिक, आचारपूर्ण, धर्मध्वजाधारी की छवि होती है। लेकिन इतिहास फ़ासीवादियों का सबसे बड़ा दुश्मन होता है। आज़ादी की लड़ाई में फ़ासीवादियों की भूमिका से लेकर आपातकाल तक के दौर में इनकी कायरता को जनता के सामने तथ्यों व तर्कों समेत बेनक़ाब किया जाना चाहिए। इनके समस्त घपलों, घोटालों, बलात्कार, दुराचार की हरक़तों को जनता के सामने खोलकर रखा जाना चाहिए। फ़ासीवादी राजनीति का इस प्रकार भण्डाफोड़ उन्हें वहाँ चोट पहुँचाता है, जहाँ सबसे ज़्यादा दर्द होता है। टुटपुँजिया वर्गों के बीच यह प्रचार फ़ासीवाद के विरुद्ध एक प्रभावी वैक्सीन का काम करता है और इस काम को कहीं ज़्यादा बेहतर तरीक़े से संगठित करने की आवश्यकता है।

कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों का तीसरा कार्यभार है जनता के वर्गों के बीच, जिसमें टुटपुँजिया वर्गों का बड़ा हिस्सा शामिल है, संस्थाबद्ध क्रान्तिकारी सुधार कार्यों व रचनात्मक कार्यों के ज़रिये एक जैविक सामाजिक आधार का विकास करना। यह भी याद रखना चाहिए कि जनता के वर्गों के रिहायशी इलाकों के भीतर संस्थाबद्ध कार्य द्वारा अपने मज़बूत सामाजिक आधार को विकसित करना फ़ासीवादियों ने अपने शुरुआती दौर में स्वयं कम्युनिस्टों से ही सीखा था। उस दौर में, कम्युनिस्ट पार्टियाँ स्वयं इलाकों में बेहद योजनाबद्ध तरीक़े से जनता के बीच सुधार कार्यों को आयोजित करती थीं। इस काम को दुनिया के अन्य किसी भी फ़ासीवादी संगठन की तुलना में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने सबसे ज़्यादा कुशलता से किया है। शाखाओं के व्यापक नेटवर्क से लेकर स्कूलों, अस्पतालों, आदि जैसे सुधार कार्यों के विराट ताने-बाने का संघ परिवार ने फ़ासीवादी साम्प्रदायिक आम सहमति बनाने में ज़बर्दस्त कुशलता के साथ इस्तेमाल किया है। इसका जवाब देने के लिए कम्युनिस्टों को भी अपनी उस परम्परा को नये सन्दर्भ में पुनर्जीवित करना होगा, जिसे अर्थवाद के वर्चस्वकारी बन जाने के कारण वे ख़ुद ही भूल गये।

आज कम्युनिस्टों को नये सिरे से मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी के वर्गों के इलाक़ों में अपनी क्रान्तिकारी सुधार की संस्थाओं को खड़ा करना होगा। यह समाज में जनता के वर्गों के बीच क्रान्तिकारी शक्तियों द्वारा अवस्थितियाँ बाँधने और रणनीतिक खन्दकें खोदने का काम करेगा, जो क्रान्तिकारी आक्रमण और रक्षा दोनों के लिए अनिवार्य है। जनता क्लिनिकों, शहीद अस्पतालों, जिमों, पुस्तकालयों, मज़दूर भोजनालयों, शव वाहन सेवा, मित्र मण्डलों, युवा क्लबों जैसी सैंकड़ों संस्थाएँ व्यापक मेहनतकश जनता के बीच रिहायशी इलाकों में खड़ी करनी होंगी। निश्चित ही, इसके लिए व्यापक पैमाने पर संसाधनों को जुटाना होगा। लेकिन कम्युनिस्ट जनता की ताक़त में भरोसा करते हैं। इस काम को प्राथमिकता में लेकर युद्धस्तर पर करना आज फ़ासीवाद-विरोधी रणनीति के लिए अपरिहार्य है। केवल इसी के ज़रिये व्यापक मेहनतकश जनता (जिसमें कि तमाम मध्यम वर्ग भी शामिल हैं) में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी वे जैविक सामाजिक आधार विकसित कर सकते हैं, जिसमें उनके क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार की अनुगूँज भी उन्हें मिलेगी। यह फ़ासीवाद-विरोधी क्रान्तिकारी प्रचार की प्रभाविता को कई गुना बढ़ा देगा। कम्युनिस्ट शक्तियों को जनता के बीच ऐसे गुँथ-बुन जाना होगा जैसे चटाई में रस्सी आपस में गुँथी-बुनी होती है। यह बेहद आवश्यक कार्यभार है और एकदम तात्कालिक कार्यभार है।

चौथा कार्यभार ग्रामीण क्षेत्रों में क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट कार्य को विकसित करना है। इतिहास हमें बताता है कि जिन भी देशों में फ़ासीवाद मुख्यत: एक शहरी परिघटना बनकर रह गया, वहाँ यह सत्ता तक नहीं पहुँच पाया। जर्मन नात्सी पार्टी व इतालवी फ़ासीवादी पार्टी की सफलता के तमाम कारणों में से एक कारण यह भी था कि उसने गाँवों में मौजूद धनी पूँजीवादी भूस्वामियों व फार्मरों की प्रतिक्रिया को अपनी प्रतिक्रिया में समाहित करने में सफलता हासिल की। कम्युनिस्ट शक्तियाँ इसका जवाब केवल तभी दे सकती हैं जब गाँवों में समाजवादी क्रान्ति के मित्र वर्गों को, यानी ग्रामीण सर्वहारा वर्ग, ग़रीब व मेहतनकश मँझोले किसान वर्ग को वे गोलबन्द और संगठित करें और उनके सामने इस सच्चाई को साफ़ करें कि उनके वर्ग हित धनी पूँजीवादी फार्मरों व कुलकों से बिल्कुल भिन्न हैं। उनके वर्ग हितों में कुछ भी साझा नहीं है। चाहे वह लाभकारी मूल्य का सवाल हो या धनी किसानों को मिलने वाली अन्य राजकीय रियायतों का। जो किसान साल भर में जितना अनाज बेचता है, उससे ज़्यादा अनाज ख़रीदता है, यानी जो मुख्य तौर पर अनाज का विक्रेता नहीं है, बल्कि उसका ख़रीदार है, उसे लाभकारी मूल्य बढ़ने का केवल नुक़सान ही हो सकता है। साथ ही, आम तौर पर, लाभकारी मूल्य के बढ़ने का अर्थ होता है खाद्यान्न की क़ीमतों में आम बढ़ोत्तरी। यह पूँजीवादी कुलकों व फार्मरों को मिलने वाला इजारेदार लगान है जो उन्हें अतिरिक्त लाभ मुहैया कराता है और अनाज की क़ीमतों को बढ़ाता है। ग़रीब किसानों व ग्रामीण सर्वहारा वर्ग को उनकी वर्गीय माँगों पर संगठित और गोलबन्द करना होगा। इनकी साझा माँग बनती है रोज़गार की गारण्टी व समान व निशुल्क शिक्षा की माँग, खेतिहर श्रम को श्रम क़ानूनों के दायरे में लाने की माँग जैसा कि दुनिया के कई देशों में है। ग़रीब व मेहनतकश मँझोले किसानों की विशिष्ट माँग यह बनती है कि अमीर वर्गों पर विशेष कर लगाकर खेती के सभी इनपुट्स को रियायती दरों पर उन्हें मुहैया कराया जाये, यानी लागत मूल्य को घटाया जाये; उन्हें बेहद आसान शर्तों और निचली ब्याज़ दरों पर संस्थागत ऋण मुहैया कराया जाये, उनके लिए गाँवों में सिंचाई के लिए नहरों के सरकारी नेटवर्क की समुचित व्यवस्था का विकास किया जाये, मुनाफ़े की औसत दर को सुनिश्चित करने वाली क़ीमतों पर सरकारी ख़रीद की व्यवस्था की जाये, सहकारीकरण में सरकारी सहायता उपलब्ध करायी जाये, इत्यादि। कम्युनिस्टों के प्रभावी हस्तक्षेप के अभाव में गाँव के ये आम मेहनतकश वर्ग, यानी समाजवादी क्रान्ति के मित्र वर्ग भी, राजनीतिक रूप से ग्रामीण खेतिहर पूँजीपति वर्ग के पिछलग्गू बनते हैं। आज उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान आदि विभिन्न प्रदेशों में यह कुलक व पूँजीवादी फार्मर वर्ग ही गाँव की मेहनतकश आबादी को भी फ़ासीवादी प्रतिक्रिया की ओर ले गया है, हालाँकि इसमें फ़ासीवादी साम्प्रदायिक प्रचार की भी एक भूमिका होती है। लेकिन साम्प्रदायिक प्रचार ही अकेले गाँवों की व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच फ़ासीवाद का आधार नहीं तैयार कर सकता था। इसमें स्वयं गाँवों के वर्ग अन्तरविरोधों की गतिकी भी काम करती है। जब तक गाँवों में आम मेहनतकश आबादी के वर्ग अपने स्वतन्त्र राजनीतिक संगठन नहीं खड़े करेंगे, तब तक इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता और फ़ासीवादी शक्तियों के लिए गाँवों को प्रतिक्रिया के आधार के रूप में विकसित करना अपेक्षाकृत आसान होगा। भारतीय फ़ासीवादी इस दिशा में बेहद तेज़ी से सीख रहे हैं। 1990 के दशक के अन्त तक भारतीय फ़ासीवाद भी मूलत: और मुख्यत: एक शहरी परिघटना बना रहा था लेकिन अपनी इस कमी को उन्होंने तेज़ी से दूर किया है। आज विशिष्ट माँगों के कारण पंजाब और हरियाणा की कुलक आबादी का भाजपा से मनमुटाव और शत्रुता देखकर किसी को भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। यह विशिष्ट आर्थिक माँगों पर हुए संघर्ष के कारण हुआ है। ऐसे रिश्ते वक़्त के साथ फिर से बदल जाएँ तो इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं होगी। समाज का विज्ञान बताता है कि अपने वर्ग हितों व वर्ग चरित्र की प्रकृति से ही आम तौर पर कुलकों व धनी किसानों का पूरा वर्ग फ़ासीवादी प्रतिक्रिया का ज़्यादा नैसर्गिक मित्र है। प्रतिक्रियावादी वर्गीय गोलबन्दी का जवाब देने के लिए कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को गाँव के मेहनतकश वर्गों की क्रान्तिकारी वर्गीय गोलबन्दी खड़ा करने का काम आज से ही शुरू करना होगा।

उपरोक्त कार्यभार वे हैं जिनका पूरा होना फ़ासीवाद की निर्णायक हार सुनिश्चित करने के लिए बेहद ज़रूरी है। एक देशव्यापी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का निर्माण व गठन जो समूची मेहनतकश आबादी की नुमाइन्दगी करती हो; मेहनतकश जनता के रोज़गार-महँगाई जैसे बुनियादी मसलों पर जनता के जुझारू जनान्दोलनों को खड़ा करना जो फ़ासीवाद को पूर्णत: ख़ारिज करते हुए आम तौर पर पूँजीवादी सत्ता व मौजूदा सरकार को कठघरे में खड़ा करें, व्यापक मेहनतकश जनता के बीच व्यापक पैमाने पर क्रान्तिकारी सुधारात्मक व रचनात्मक संस्थाओं का निर्माण और एक आवयविक सामाजिक आधार का विकास करना: इन कार्यभारों को यदि समुचित ढंग से निभाया जाये तो निश्चित ही मज़दूर वर्ग द्वारा फ़ासीवाद पर निर्णायक विजय प्राप्त करने के लक्ष्य को वास्तविकता में तब्दील करने की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है।

बहुमत से पीछे रहने के बावजूद फ़ासीवादी भाजपा के दाँत, नख और पंजे राज्यसत्ता में और अन्दर तक धँसे

(पेज 1 से आगे)

चुने जायेंगे जो मोदी-शाह को पसंद हो। तब किसके पक्ष में निर्णय होंगे, यह तो अच्छे से समझा जा सकता है।

2. ईवीएम की विश्वसनीयता

ईवीएम के इस्तेमाल और इसकी विश्वसनीयता पर सवाल तो बहुत लम्बे समय से उठ रहे है। इसके प्रमाण तो 2019 के लोकसभा चुनावों से लेकर उसके बाद हुए सभी विधानसभा चुनावों में भी देखने को मिले थे, लेकिन इन सबको एक बार फिर से नज़रअंदाज कर दिया गया। सुप्रीम कोर्ट ने 26 अप्रैल को बैलट पेपर से चुनाव कराने को लेकर इनकार कर दिया व इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) मतदान प्रणाली को बरक़रार रखा। याचिकाकर्ताओं की उस माँग को भी अस्वीकार कर दिया जिसमें ईवीएम पर डाले गये वोटों के वोटर वेरिफायेबल पेपर ऑडिट ट्रेल (वीवीपीएटी) पेपर पर्चियों से सौ प्रतिशत मिलान करने का निर्देश देने की माँग की गयी थी। 2024 के चुनाव के नतीजों के बाद ईवीएम की विश्वसनीयता पर फिर गहरे सवाल खड़े हो चुके हैं। इस बार हुए चुनाव में 362 लोकसभा क्षेत्रों से कुल 5,54,598 मतों को ख़ारिज कर दिया गया, जिसके बारे में चुनाव आयोग पूरी तरह ख़ामोश है।

3. भाजपा नेताओं के साम्प्रदायिक भाषणों-पोस्टरों पर चुनाव आयोग की चुप्पी

भाजपा नेताओं के साम्प्रदायिक भाषणों में, जिसमें नरेन्द्र मोदी का नाम प्रमुखता से शामिल था, कांग्रेस द्वारा चुनाव जीतने की सूरत में हिन्दू औरतों का मंगलसूत्र छीन लेने, हिन्दू आबादी की भैंस छीन कर मुसलमानों को दे देने की बात लगातार गूँजती रही। इसी प्रकार, मीट-मछली-मटन-मुजरा को लेकर साम्प्रदायिक बयान मोदी समेत अन्य भाजपा नेताओं द्वारा लगातार दिये जाते रहे। दिल्ली के कई हिस्सों में बैनर और तख्तियाँ थीं, जिनमें खुलेआम दावा किया गया था कि अयोध्या में राम लला को स्थापित करवाने के लिए मोदी सरकार को कैसे वापस लाया जायेगा। कर्नाटक में मुसलमानों को फण्ड देने के झूठे कार्टून और वीडियो निकाले जा रहे थे, जिन पर लगातार सवाल उठाये जाने के बावजूद इन्हें चुनाव ख़त्म होने के बाद ही हटाया गया।

इन तमाम मुद्दों पर केचुआ (केन्द्रीय चुनाव आयोग) एक रीढ़विहीन केंचुए की तरह बर्ताव करता रहा। इन तमाम साम्प्रदायिक बयानबाज़ियों और चुनावी भाषणों के बाद केचुआ ने मोदी को कोई चेतावनी नहीं दी और न ही नामांकन को रद्द नहीं किया। महज़ भाजपा अध्यक्ष जेपी नड्डा को पत्र लिखा गया! बाद में प्रेस कॉन्फ्रेंस करके बोला जाता है कि हमने जानबूझकर दोनों पार्टी के स्टार प्रचारकों पर कोई कार्रवाई नहीं की। अब फ़ासीवादी मोदी-शाह जोड़ी के आगे केचुआ द्वारा इस तरह दण्डवत प्रणाम करने पर क्या ही कहा जाये।

4. चुनावों में उम्मीदवारों की खरीद-फ़रोख्त, बाँह मरोड़ना व नामांकन रद्द किया जाना

इन्दौर, सूरत, गांधीनगर, वाराणसी और देश के अलग-अलग कोनों से चुनावों में उम्मीदवारों की खरीद-फ़रोख्त, उन्हें धमकाने व नामांकन रद्द करने की ख़बरें सामने आयी हैं। इन्दौर में कांग्रेस के उम्मीदवार अक्षय कान्ति बाम ने मतदान के कुछ रोज़ पहले अपना नामांकन वापस ले लिया। नामांकन वापस लेने के अगले दिन अक्षय कान्ति बाम भाजपा के बड़े नेता कैलाश विजयवर्गीय के साथ गले में भगवा पटका डाले हुए दिखे।

गाँधीनगर की सीट पर अमित शाह के खिलाफ़ खड़े अन्य प्रत्याशियों को डराने-धमने की बात सामने आ रही है। इस सीट के एक प्रत्याशी ने वीडियो सन्देश के ज़रिये बताया था कि उन्हें अपना नाम वापस लेने के लिए धमकियाँ दी जा रही हैं।

श्याम रंगीला, जो वाराणसी से मोदी के खिलाफ़ चुनाव लड़ने की कोशिश कर रहे थे, ने दावा किया कि आरओ ने उनका नामांकन ख़ारिज कर दिया क्योंकि उन्होंने शपथ नहीं ली, जैसा कि संविधान द्वारा अनिवार्य है। रंगीला के अनुसार, जब उन्होंने और अन्य उम्मीदवारों ने सोमवार को अपना नामांकन दाखिल करने की कोशिश की तो उन्हें ज़िला मजिस्ट्रेट के कार्यालय में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी गयी थी। खजुराहो में इण्डिया गठबन्धन की तरफ़ से खड़े हुए सपा के उम्मीदवार का पर्चा रद्द कर दिया गया था। यह पर्चा बेहद मामूली तकनीकी आधार पर रद्द किया गया। मुंबई उत्तर पूर्व से **भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI)** के उम्मीदवार बबन ठोके का नामांकन भी इसी तरह बेहद मामूली तकनीकी कारणों की वजह से ख़ारिज कर दिया गया था।

5. वोटरों का लिस्ट से नाम काटना, डराना-धमकाना व धीमी वोटिंग की रपटें

पुलिस, सेना व अर्द्धसैनिक बलों के भीतर फ़ासीवादी घुसपैठ का इस्तेमाल कर तथा प्रशासनिक मशीनरी का दुरुपयोग कर कई इलाकों में लोगों को वोट डालने से रोकना, उसमें बाधा पैदा करना और फ़र्ज़ी जाँच के ज़रिये उन लोगों से वोटिंग का जनवादी अधिकार छीन लेने की ख़बरें कई जगहों से सामने आयी थीं। हैदराबाद में भाजपा प्रत्याशी व दंगाई भाषणों के लिए कुख्यात माधवी लता द्वारा लोगों के वोटर कार्ड देखने व उन्हें धमकाने के वीडियो सामने आये थे। 26 अप्रैल को मथुरा में अनेक मुसलमान वोटरों ने पाया कि उनका नाम वोटर लिस्ट से हटा दिया गया है। ऐसी ही कई ख़बर अन्य जगहों से भी आई हैं। वहीं एक भाजपा कार्यकर्त्ता के बेटे द्वारा एक मशीन से 8 वोट डालते हुए वीडियो वायरल हुआ।

यह भी देखा गया कि चुनाव

आयोग ने मतदाताओं के कुछ वर्गों व समुदायों को हतोत्साहित करने के लिए सुनियोजित तरीक़े से कुप्रबन्धन किया। जैतपुर, जामिया नगर और शाहीन बाग जैसे कुछ मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों में, प्रति बूथ 1650-1700 मतदाताओं की संख्या थी। ऐसे बूथों पर इतना तंग आवण्टन करने के लिए सवाल चुनाव आयोग पर उठाया जाना चाहिए, जब प्रति वोट पड़ने में लगने वाला औसत समय 50 सेकण्ड से एक मिनट तक है। यह बात एकदम स्पष्ट है कि सबसे कुशल प्रबंधन प्रणालियों के तहत भी एक मतदान बूथ में 750-800 से अधिक वोट नहीं डाले जा सकते हैं।

मज़दूर वर्ग के बूथों पर, विशेषकर मुस्लिम और दलित इलाक़ों में, धीमी वोटिंग सबसे ज़रूरी मुद्दों में से एक थी। चुनाव आयोग में स्वतंत्र सामाजिक संगठनों द्वारा कई शिक़ायतें दर्ज होने के बावजूद धीमी गति से मतदान जारी रहा। कई बूथों पर मतदाताओं के समय पर बूथ पर पहुँचने के बावजूद शाम छह बजे मतदान बंद हो गया। दिल्ली के खजूरी खास और ओखला जैसे इलाक़ों में ऐसी शिक़ायतें मिलीं कि पुलिस ने बूथ पर इस तरह से बैरिकेडिंग कर दी कि शाम 5 बजे के बाद ही मतदाताओं को मतदान केन्द्र के गेट तक नहीं पहुँचने दिया गया। ऐसे में मौजूदा चुनावों को किसी भी रूप में निष्पक्ष, स्वतन्त्र या पारदर्शी नहीं माना जा सकता है।

6. अपारदर्शी चुनावी प्रक्रिया

लोकसभा चुनाव के सात चरणों में से दो चरण पूरे हो चुकने के बावजूद आँकड़े 19 अप्रैल को पहले चरण के मतदान के 11 दिन बाद और 26 अप्रैल को दूसरे चरण के मतदान के चार दिन बाद आये। इन दो चरणों के लिए अन्तिम मतदान प्रतिशत की घोषणा में देरी को लेकर चुनाव आयोग पर सवालिया निशान खड़ा होना लाज़िमी है।

ऐसे में 23 मई को, पांचवे चरण के मतदान के समाप्त होने के 48 घंटों के भीतर फॉर्म 17सी की प्रतियों को सार्वजनिक करने की माँग का विरोध करने वाले चुनाव आयोग पर पारदर्शिता-विरोधी रुख अपनाने को लेकर सवाल उठाए गये। चुनाव आयोग ने कहा था कि नागरिकों को फॉर्म 17-सी में प्रदान किए गये डेटा को जानने का दावा करने का कोई क़ानूनी अधिकार नहीं है! चुनाव आयोग का तर्क है कि इस डेटा को गुप्त रखा जाना है (!)-किससे गुप्त? और क्यों? इतने दिनों के बाद डेटा भी चमत्कारिक तरीक़े से बदल गया! वास्तविक समय के मतदान आँकड़ों और केन्द्रीय चुनाव आयोग (केचुआ) द्वारा जारी अन्तिम आँकड़ों के बीच 1.07 करोड़ का कुल अन्तर आमने आया है, जिसके चलते यह अन्तर प्रत्येक लोकसभा क्षेत्र में 28,000 का होगा। इन तमाम सवालों पर भी केचुआ ने बहुत गोलमाल उत्तर दिया।

7. चुनाव परिणामों में घपले

चुनाव परिणामों में भी कई तरह के घपले सामने आये हैं। परिणाम के दिन काउण्टिंग एजेण्ट द्वारा कण्ट्रोल यूनिट में कई तरह की अनियमितताएँ देखने को मिलीं जैसे बैटरी फुल होना, सील पहले से टूटी होना, सीरियल मैच न करना आदि की ख़बरें सामने आयीं। जहाँ तमिलनाडु के तिरुवल्लूर में 17-सी फॉर्म के हिसाब से मशीन से 16,791 वोट कम पाये गये, वहीं असम के करीमगंज में 3,811 वोट ज़्यादा पाये गये। ये काफ़ी बड़े अन्तर हैं जिसके बारे में चुनाव आयोग की तरफ़ से कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया।

इसी तरह इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों (ईवीएम) पर डाले गये वोटों की गिनती के दौरान हारने के बावजूद दो उम्मीदवारों ने लोकसभा चुनाव जीत लिया। जिसमें वाइकर ने महाराष्ट्र में मुंबई उत्तर पश्चिम सीट से जीत हासिल की, उन्होंने शिवसेना (UBT) के उम्मीदवार अमोल गजानन कीर्तिकर को महज़ 48 वोटों से हराया है। हालाँकि वोटिंग सेंटर पर गड़बड़ी की आशंका जताते हुए इस मामले में FIR दर्ज कराने की माँग की गयी है। अब इस मामले में एक बड़ा अपडेट सामने आया है। पुलिस की तरफ से रिटर्निंग ऑफिसर (RO) पर आरोप लगाया गया है कि वह इस मामले में FIR नहीं दर्ज होने दे रहे हैं। 'मिड डे' अखबार की एक रिपोर्ट के अनुसार, RO पर आरोप लगा है कि उन्होंने वोटिंग हॉल के CCTV फुटेज उपलब्ध कराने में सहयोग नहीं किया है।

सबक़ लेने की कुछ बातें

18 वें लोकसभा चुनाव में काफ़ी तीखा राजनीतिक ध्रुवीकरण देखने को मिला है। बढ़ती महँगाई, बेरोज़गारी और बुनियादी समस्याओं से जूझ रही जनता में भाजपा-विरोधी लहर देखने को मिल रही थी। ऐसे में जहाँ भाजपा द्वारा राज्यसत्ता की मशीनरी का अन्दरूनी 'टेक ओवर' करके इसको अपने हितों के लिए इस्तेमाल करना ज़रूर जारी था, मगर इसके ख़िलाफ़ प्रशासन को जन-विरोध का सामना भी लगातार करना पड़ रहा था, जिसकी वजह से जहाँ चुनाव आयोग वोटर काउंट देने से मना कर रहा था, बढ़ते जन दबाव की वजह से उसे सारी संख्या बतानी पड़ी। जब चुनाव आयोग प्रेस कांफ्रेंस नहीं कर रहा था, तब दबाव की वजह से उसे प्रेस कांफ्रेंस करनी पड़ी। यही नहीं देश भर में 120 से ज़्यादा नागरिक समाज के संगठनों ने परिणाम के दिन काउंटिंग सेण्टर के बाहर खड़े होकर चुनावी प्रक्रिया ढंग से हो उसे सुनिश्चित करने का काम भी एक हद तक किया। मगर इन सबके बावजूद फ़ासीवाद को चुनाव के रास्ते हराने की भूल कर बैठना, मज़दूर वर्ग के लिए बेहद ख़तरनाक साबित होगा। मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी ने इतने सालों की मेहनत और संघर्ष के बाद अपने जनवादी अधिकार हासिल किये हैं, उसे बचाने के लिए संघर्ष करना भी मज़दूर वर्ग का फ़र्ज बनता है। ऐसे में जनवादी अधिकारों पर हमलों के ख़िलाफ़ तमाशबीन बन कर नहीं रहा जा सकता है और उनकी हिफ़ाज़त की लड़ाई भी मज़दूर वर्ग के कन्धों पर है। आज फ़ासीवाद की निर्णायक हार पूँजीवाद-विरोधी मज़दूर क्रान्ति से अंतरगुन्थित है। ऐसे में एक अखिल भारतीय क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण व उसे मज़बूत बनाने का कार्यभार मज़दूर वर्ग के लिए बेहद महत्वपूर्ण है।

मज़दूर आन्दोलन में मौजूद किन प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ मज़दूर वर्ग का लड़ना ज़रूरी है?

क्रान्तिकारी सर्वहारा को अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाना होगा!

(दसवीं किश्त)

● शिवानी

अर्थवाद की प्रवृत्ति पर अपनी चर्चा जारी रखते हुए हमने पिछली बार सांगठनिक मामलों में भी अर्थवादियों की संकीर्णता पर बात रखी और इस विषय में लेनिन के विचारों को जानने का प्रयास किया। लेनिन के हवाले से हमने बताया कि **दृढ़ सैद्धान्तिक बुनियाद पर खड़ा मज़बूत क्रान्तिकारी संगठन, जिसका मेरुदण्ड पेशेवर क्रान्तिकारियों का तपा-तपाया ढाँचा हो, जनसमुदायों के अलग-अलग संस्तरों के बीच क्रान्तिकारी आन्दोलन के वृहद् कार्यभारों को पूरा करने की सबसे आवश्यक व बुनियादी पूर्वशर्त है।** इसके साथ ही लेनिन यह भी स्पष्ट करते हैं कि ऐसे पेशेवर क्रान्तिकारी केवल बुद्धिजीवियों की जमात से नहीं आते बल्कि मज़दूर जमात से भी आते हैं। अब इस चर्चा को आगे बढ़ाते हैं।

अपनी रचना **'क्या करें?'** में लेनिन अर्थवादियों की इस बात के लिए आलोचना करते हैं जब वे कहते हैं कि मज़दूर चूँकि साढ़े ग्यारह-बारह घण्टे कारख़ाने में बिताता है इसलिए आन्दोलन के काम को छोड़कर (यानी कि आर्थिक संघर्ष को छोड़कर) बाक़ी सभी कामों का बोझ "लाज़िमी तौर पर मुख्यतया बहुत ही थोड़े-से बुद्धिजीवियों के कन्धों पर आ पड़ता है"। लेनिन इस अर्थवादी समझदारी का विरोध करते हैं और कहते हैं कि ऐसा होना कोई "लाज़िमी" बात नहीं है। लेनिन बताते हैं कि ऐसा वास्तव में इसलिए होता है क्योंकि क्रान्तिकारी आन्दोलन पिछड़ा हुआ है और इस भ्रामक समझदारी से ग्रस्त है कि हर योग्य मज़दूर को पेशेवर उद्वेलनकर्ता, संगठनकर्ता, प्रचारक, साहित्य-वितरक, आदि बनाने में मदद करना उसका कर्तव्य नहीं है। लेनिन कहते हैं कि इस मामले में हम बहुत शर्मनाक ढंग से अपनी शक्ति का अपव्यय करते हैं; "जिस चीज़ की हमें विशेष ज़ोर देकर हिफ़ाज़त करनी चाहिए, उसकी देखरेख करने की हममें क़ाबिलियत नहीं है"। लेनिन इस अर्थवादी सोच का भी खण्डन करते हैं जो केवल मज़दूरों को उन्नत, औसत और पिछड़े तत्वों में बाँटती है। लेनिन के अनुसार न केवल मज़दूर बल्कि बुद्धिजीवियों को भी इन तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

लेनिन जर्मनी के क्रान्तिकारी आन्दोलन का उदाहरण देते हुए बताते हैं कि वहाँ हर योग्य मज़दूर को तुरन्त ऐसी परिस्थितियों में रखने का प्रयत्न किया जाता है, जिनमें वह अपनी क्षमताओं का अधिक से अधिक विकास तथा उपयोग कर सके: उसे पेशेवर उद्वेलनकर्ता बनाया जाता है, उसे अपने कार्य का क्षेत्र बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, उसे एक कारख़ाने से बढ़कर पूरे उद्योग में और एक स्थान से बढ़कर पूरे देश में अपना कार्य-क्षेत्र फैलाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसी प्रक्रिया में एक मज़दूर-क्रान्तिकारी का दृष्टिकोण व्यापक बनता है और उसका ज्ञान बढ़ता है। **लेनिन बल देकर कहते हैं कि "आम मज़दूर इसी तरह और केवल इसी तरह बेबेल और आयर जैसे आदमी पैदा करते हैं"।** साथ ही लेनिन यह भी जोड़ते है कि रूस जैसे राजनीतिक रूप से "अस्वतन्त्र" देश में यह काम सचेतन तौर पर और सुनियोजित ढंग से क्रान्तिकारी संगठनों को पूरा करना चाहिए, जो जर्मनी जैसे देशों में प्रायः आसानी से होते हुए नज़र आते हैं। देखें लेनिन क्या लिखते हैं:

"जिस मज़दूर उद्वेलनकर्ता में थोड़ी भी प्रतिभा हो और जो थोड़ा भी होनहार हो, उसे कारख़ाने में ग्यारह घण्टे रोज़ काम करने के लिए छोड़ नहीं देना चाहिए। **हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि उसकी आजीविका का भार पार्टी अपने ऊपर ले ले, कि वह ठीक समय पर भूमिगत हो जाये और अपने कार्य-क्षेत्र को बदल दे, अन्यथा उसका अनुभव नहीं बढ़ेगा, उसका दृष्टिकोण व्यापक नहीं बनेगा और वह राजनीतिक पुलिस के ख़िलाफ़ संघर्ष में चन्द साल भी खड़ा नहीं रह सकेगा। जैसे-जैसे मज़दूर जनसमुदायों का स्वतःस्फूर्त उभार विस्तार और गहराई में बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे मज़दूर जनसमुदाय अपने बीच से न केवल प्रतिभाशाली उद्वेलनकर्ताओं को, बल्कि प्रतिभाशाली संगठनकर्ताओं, प्रचारकों और "व्यावहारिक कार्यकर्ताओं" को भी बढ़ती हुई संख्या में उत्पन्न करते जाते हैं।**... जब हमारे पास ऐसे प्रशिक्षित मज़दूर क्रान्तिकारियों के दस्ते होंगे, जो काफ़ी तैयारियाँ कर चुके होंगे... तब दुनिया की कोई राजनीतिक पुलिस उनका मुक़ाबला नहीं कर सकेगी, क्योंकि क्रान्ति में अटूट निष्ठा रखने वाले व्यक्तियों के इन दस्तों को आम मज़दूरों के व्यापकतम हिस्सों का पूर्ण विश्वास प्राप्त होगा। **यह सीधे-सीधे हमारा दोष है कि हम मज़दूरों को पेशेवर क्रान्तिकारी प्रशिक्षण का यह रास्ता अपनाने के लिए, जो उनके और "बुद्धिजीवियों" के लिए समान रास्ता है, बहुत ही कम "प्रेरित" करते हैं** और अक्सर ऐसी बातों के बारे में मूर्खतापूर्ण भाषण सुना-सुनाकर हम उन्हें पीछे घसीटते रहते हैं कि आम मज़दूर या "औसत मज़दूर" किन बातों को समझ सकते हैं, आदि।" (*ज़ोर हमारा*)

लेनिन यहाँ पर क्रान्तिकारी आन्दोलन की मनोगत कमज़ोरी की ओर इशारा कर रहे हैं जो अपनी विफलता को छिपाने के लिए मज़दूर जनसमुदायों की "पिछड़ी" चेतना का हवाला देकर ख़ुद उनके पीछे घिसटने की वक़ालत का सिद्धान्त देने लगता है। लेनिन आगे इस बात को एक बार फिर दुहराते हैं कि और सभी मामलों की तरह इस मामले में भी हमारे सांगठनिक काम का सीमित विस्तार, जोकि अर्थवाद का ही संगठनात्मक लक्षण है, निस्सन्देह इस बात से अटूट रूप से जुड़ा है कि हम अपने सिद्धान्तों और राजनीतिक कार्यभारों को एक छोटे दायरे तक सीमित रखते हैं। लेनिन अर्थवाद के पैरोकारों का मखौल उड़ाते हुए कहते हैं:

"स्वतःस्फूर्तता की पूजा करने की भावना के कारण हमें उन बातों से एक क़दम भी इधर-उधर उठाने में डर लगता है, जिन्हें आम जनता "समझ सकती है", हमें डर लगता है कि हम कहीं जनता की तात्कालिक एवं प्रत्यक्ष आवश्यकताओं में ही जुटे रहने से बेहद ऊपर न उठ जायें। लेकिन महानुभावों डरिये नहीं! याद रखिये कि संगठन के मामले में हम इतने निचले स्तर पर खड़े हैं कि ज़रूरत से ज़्यादा ऊपर उठ सकने का विचार तक मन में लाना मूर्खता है!"

यानी अर्थवाद मज़दूर वर्ग की स्वतःस्फूर्त चेतना के पीछे-पीछे घिसटते रहने को ही सिद्धान्त के धरातल पर पहुँचा देता है। इसकी विस्तृत चर्चा हमने पिछले अंकों में की है। इसके बाद लेनिन **'क्या करें?** में एक ज़रूरी प्रश्न पर चर्चा केन्द्रित करते हैं। लेनिन कहते हैं कि अर्थवादी इस्क्रावादियों यानी क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों पर षड्यन्त्रकारी होने का आरोप लगाते हैं क्योंकि वे पेशेवर क्रान्तिकारियों के ढाँचे से निर्मित केन्द्रीकृत मज़बूत हिरावल पार्टी की वक़ालत करते हैं। लेनिन कहते हैं कि अर्थवादी क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों पर *'नरोदनाया वोल्या'*-वादी होने और "जनवाद" को न समझने का आरोप लगाते हैं।

बताते चलें कि *'नरोदनाया वोल्या'* ('जन संकल्प') अगस्त 1879 में बना नरोदवादी आतंकवादियों का गुप्त राजनीतिक संगठन था। नरोदवाद रूसी क्रान्तिकारी आन्दोलन में एक टुटपुँजिया प्रवृत्ति थी जो 19वीं शताब्दी के सातवें और आठवें दशक में पैदा हुई थी। नरोदवादियों ने ज़ार की निरंकुश सत्ता की समाप्ति और भूस्वामियों की ज़मीनें किसानों को देने की माँग उठायी थी। वे अपने को समाजवादी मानते थे लेकिन उनका समाजवाद काल्पनिक था, वैज्ञानिक नहीं, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। हालाँकि बाद के दौर में नरोदवादियों ने ज़ारशाही के प्रति समझौतावादी रुख अपनाया, धनी किसानों और कुलकों के हितों को व्यक्त किया और मार्क्सवाद के विरुद्ध संघर्ष चलाया और उसका विरोध किया। नरोदवाद के विरुद्ध भी लेनिन व बोल्शेविक पार्टी ने दृढ़तापूर्वक विचारधारात्मक संघर्ष चलाया था। बहरहाल, जहाँ तक *'नरोदनाया वोल्या'* का प्रश्न था, तो इस संगठन के सदस्य नरोदवादी यूटोपियाई समाजवादी विचारों को ही मानते थे लेकिन उन्होंने नरोदवाद के इतिहास में पहली बार राजनीतिक संघर्ष का रास्ता अपनाया जिसका पहला लक्ष्य निरंकुशतन्त्र को उखाड़ फेंकना और राजनीतिक स्वतन्त्रता हासिल करके जनवादी गणतन्त्र की स्थापना करना था।

यह बात सच है कि *'नरोदनाया वोल्या'* द्वारा राजनीतिक संघर्ष की आवश्यकता का सवाल उठाया गया मगर वे इस संघर्ष को षड्यन्त्र और व्यक्तिगत आतंक का ही पर्याय मानते थे। कुछ असफल प्रयासों के बाद *'नरोदनाया वोल्या'* के सदस्यों द्वारा 1 मार्च, 1881 को ज़ार अलेक्सान्द्र द्वितीय की हत्या कर दी गयी। हत्या में भाग लेने वालों को फाँसी की सज़ा सुनायी गयी, इसके बाद कुछ मुक़दमें भी चले। इसके साथ *'नरोदनाया वोल्या'* की गतिविधियों का अन्त हो गया। अपनी अकूत क़ुर्बानियों और आत्मत्याग के बावजूद यह संगठन यदि अपना लक्ष्य पाने में असफल रहा तो इसका कारण उसका ग़लत सैद्धान्तिक आधार तथा कार्यनीति और आम जनता के साथ व्यापक व घनिष्ठ सम्बन्धों का अभाव यानी क्रान्तिकारी जनदिशा को लागू करने का अभाव था। सक्रिय "नायकों" और निष्क्रिय "जन" की इस ग़लत सैद्धान्तिक समझदारी के आधार पर *'नरोदनाया वोल्या'* बिना व्यापक जनता की भागीदारी के और केवल अपने व्यक्तिगत आतंकी प्रयासों के ज़रिये सामाजिक परिवर्तन लाना चाहता था, जोकि असम्भव था। दरअसल क्रान्तिकारी आन्दोलन में ऐसी *पेटी बुर्जुआ* व्यक्तिगत नायकवाद और दुस्साहसवाद की प्रवृत्ति समय-समय पर सर उठाती रहती है जिसके पीछे क्रान्ति तथा सामाजिक परिवर्तन के विज्ञान को न समझ पाने का कारण ही प्रमुख होता है। भारत में ऐसे दुस्साहसवादी नरोदवादी आज भी मौजूद हैं।

खैर, मूल चर्चा पर वापस लौटते हैं। अर्थवादियों के उपरोक्त आरोपों का खण्डन प्रस्तुत करते हुए लेनिन कहते हैं कि ये आरोप एक दोहरी ग़लतफहमी का नतीजा है। लेनिन बताते हैं कि क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास की कम जानकारी के चलते किसी भी ऐसे जुझारू केन्द्रीकृत संगठन को, जिसने ज़ारशाही के ख़िलाफ़ दृढ़ संघर्ष का ऐलान किया हो, उसे *'नरोदनाया वोल्या'* का नाम दे दिया जाता है। इसके बाद लेनिन स्पष्ट करते हैं कि पिछली शताब्दी के आठवें दशक (यानी 1870-1880 के दशक के दौरान) में क्रान्तिकारियों ने जो शानदार संगठन बनाया था और जिसे कम्युनिस्टों को अपना आदर्श बनाना चाहिए, उसे *'नरोदनाया वोल्या'*-वादियों ने नहीं बल्कि *'ज़ेम्ल्या इ वोल्या'* ('ज़मीन और आज़ादी') के सदस्यों ने बनाया था, जो बाद में *'चोर्नी पेरेदेल'* ('आम भूमि पुनर्वितरण') और *'नरोदनाया वोल्या'* (जिसकी चर्चा हमने ऊपर की) नामक दो दलों में बँट गया था। इसलिए जुझारू क्रान्तिकारी संगठन को *'नरोदनाया वोल्या'*-वादियों की कोई ख़ास चीज़ समझना, इतिहास और तर्क दोनों ही दृष्टि से बेतुका है।

यहाँ एक बेहद संक्षिप्त चर्चा *'ज़ेम्ल्या इ वोल्या'* के विषय में करना प्रासंगिक होगा क्योंकि यह रूसी सामाजिक जनवादी आन्दोलन के इतिहास को समझने में भी सहायक होगा। *'ज़ेम्ल्या इ वोल्या'* क्रान्तिकारी नरोदवादियों का एक गुप्त संगठन था जिसकी स्थापना पीटर्सबर्ग में 1876 की शरद में हुई थी। यह ग्रुप केन्द्रीयकरण और अनुशासन के आधार पर बना था। *'ज़ेम्ल्या इ वोल्या'*, नरोदवाद के सभी संस्करणों की भाँति, रूस में किसानों को मुख्य क्रान्तिकारी शक्ति मानता था और ज़ारशाही के विरुद्ध संघर्ष के लिए किसानों को जागृत और गोलबन्द करने का पक्षधर था। रूस की कई गुबेर्नियाओं में इसने क्रान्तिकारी कार्य को संगठित करने का प्रयास किया।

नरोदवाद की थोड़ी-बहुत चर्चा हम ऊपर कर आये हैं। नरोदवाद का आम तौर पर मानना था कि रूस में पूँजीवादी सम्बन्धों का विकास अनिवार्य नहीं है और पूँजीवाद के चरण से गुज़रे बग़ैर ही रूस में समाजवाद लाया जा सकता है। यानी नरोदवाद के अनुयायी ऐतिहासिक विकास की गति को नहीं समझते थे। यही कारण था कि वे रूस में सर्वहारा वर्ग की जगह किसानों को मुख्य क्रान्तिकारी शक्ति के रूप में देखते थे और ग्राम-समुदाय को समाजवाद का भ्रूण-रूप मानते थे। इसी वजह से समाजवाद की नरोदवादी परिकल्पना को काल्पनिक या यूटोपियाई कहा गया।

अन्तिम लक्ष्य के रूप में समाजवाद से इनकार न करते हुए भी *'ज़ेम्ल्या इ वोल्या'* ने जनता की वर्तमान माँग यानी "ज़मीन और आज़ादी" की माँग के अमल को निकटतम लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया। हालाँकि किसानों के बीच असफल क्रान्तिकारी कार्य और बढ़ते हुए सरकारी दमन के फलस्वरूप 1879 में *'ज़ेम्ल्या इ वोल्या'* के भीतर एक आतंकवादी धड़ा तैयार हुआ जिसने किसानों के बीच क्रान्तिकारी कार्य करने से इन्कार कर दिया और ज़ारशाही सरकार के सदस्यों के विरुद्ध आंतकवाद को ही ज़ारशाही के ख़िलाफ़ क्रान्तिकारी संघर्ष के मुख्य साधन के तौर पर मान्यता दी। 1879 में वोरोनेज़ में आयोजित एक कांग्रेस में *'ज़ेम्ल्या इ वोल्या'* दो संगठनों में विभक्त हो गया। ये थे *'नरोदनाया वोल्या'* जिसने आतंकवाद और दुस्साहसवाद की आम दिशा अपनायी (जिसकी चर्चा हमने ऊपर की) व *'चोर्नी पेरेदेल'* जो *'ज़ेम्ल्या इ वोल्या'* के दृष्टिकोण पर क़ायम रहा।

आगे चलकर, *'चोर्नी पेरेदेल'* के अनुयायियों के एक दल- प्लेखानोव, अक्सेलरोद, वेरा ज़ासुलिच, डॉइच, इग्नातोव – ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण

(पेज 13 पर जारी)

मज़दूर वर्ग की पार्टी कैसी हो?

(सातवीं किश्त)

कम्युनिस्ट लीग का गठन कैसे हुआ?

● सनी

एंगेल्स के अनुसार "हर सिद्धान्त... पहले अपने समक्ष उपलब्ध बौद्धिक सामग्री से ही जुड़ता है चाहे वह खुद कितना ही आर्थिक तथ्यों पर आधारित क्यों न हो।" मार्क्स-पूर्व समाजवादी सिद्धान्त फ्रांसिसी क्रान्ति और प्रबोधन काल की वैचारिक सामग्री पर आधारित थे। मज़दूर वर्ग ने भी अपनी शैशवावस्था में समाजवाद के उन शैशव सिद्धान्तों को ही अपनाया जो उसके समक्ष उपलब्ध थे। कम्युनिस्ट घोषणापत्र के छपने से पहले वैज्ञानिक समाजवाद की जगह काल्पनिक समाजवाद की कई क़िस्मों का मिला-जुला खिचड़ी समाजवाद इंग्लैंड और फ्रांस के मज़दूरों के मस्तिष्कों पर हावी था।

1840 के दशक के मध्य तक मार्क्स-एंगेल्स द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद तक पहुँच चुके थे और काल्पनिक समाजवाद की बहुधा क़िस्मों की आलोचना कर वैज्ञानिक समाजवाद पेश कर रहे थे। यह दौर मार्क्स-एंगेल्स के क्रान्तिकारी व्यवहार के पहले प्रयोगों का भी दौर है जिसमें उन्होंने मज़दूर वर्ग के संगठन पर तथा उसकी रणनीति और आम रणकौशल पर भी कुछ बुनियादी अवधारणाएँ रखीं। मार्क्स और एंगेल्स अपने विचारों के इर्द-गिर्द मज़दूर वर्ग को संगठित करने के प्रयास के क्रम में 'लीग ऑफ़ जस्ट' से जुड़ते हैं और उसे 'कम्युनिस्ट लीग' में बदलते हैं।

मज़दूर वर्ग के संगठन के बारे में मार्क्स–एंगेल्स के विचारों का सन्दर्भ समझने के लिए हमें इस दौर की राजनीतिक परिस्थिति, मज़दूर वर्ग के आर्थिक विकास तथा समाजवाद के सिद्धान्त के विकास का अवलोकन करना चाहिए। मज़दूर वर्ग ने फ्रांस में जून 1848 में पहली बार सत्ता पर धावा बोला हालाँकि वह पराजित हुआ। यूरोप के अन्य शहरों, बर्लिन, विएना और मिलान में भी विद्रोह भड़क उठा परन्तु अंततः पराजय में ही तब्दील हुआ। इस पराजय का समाहार करते हुए एंगेल्स लिखते हैं कि:

> "जब फ़रवरी क्रान्ति भड़की, तब जहाँ तक क्रान्तिकारी आन्दोलनों की अवस्थाओं और प्रक्रम के बारे में हमारी धारणाओं का प्रश्न था, हम सब के मन पर पहले का ऐतिहासिक अनुभव, विशेषतः फ्रांस का अनुभव छाया हुआ था। वास्तव में 1789 से पूरा यूरोपीय इतिहास फ्रांस के अनुभव से आच्छन्न रहा था, और अब फिर इसी देश ने आम क्रान्तिकारी रद्दोबदल के लिए बिगुल बजाया था। इसलिए यह स्वाभाविक तथा अनिवार्य था कि पेरिस में फ़रवरी 1848 में घोषित "सामाजिक" क्रान्ति के, सर्वहारा की क्रान्ति के स्वरूप तथा प्रक्रम के बारे में हमारी धारणाएँ 1789 तथा 1830 के प्राक्-रूपों की स्मृतियों से प्रबल रूप से प्रभावित हों। इसके अलावा जब पेरिस का विद्रोह वियेना, मिलान और बर्लिन के विजयी विद्रोहों में प्रतिध्वनित हुआ, जब ऐन रूस की सरहद तक पूरा यूरोप आन्दोलन की लपेट में आ गया, जब इसके बाद जून में पेरिस में सत्ता के लिए सर्वहारा और पूँजीपति वर्ग की पहली लड़ाई लड़ी गयी; जब सभी देशों का पूँजीपति वर्ग स्वयं अपने वर्ग की विजय से इतना दहल गया कि उसने भाग कर राजतन्त्रवादी-सामन्ती प्रतिक्रियावाद का दामन पकड़ा, जिसका तख़्ता अभी हाल में उलटा गया था-तब उस वक़्त की परिस्थितियों में हम इस बात में सन्देह न कर सकते थे कि महान निर्णायक लड़ाई शुरू हो गयी है, कि यह लड़ाई क्रान्ति के एक ही लम्बे, उतार-चढ़ाव वाले काल में लड़नी होगी, पर अन्त में उसकी परिणति सर्वहारा की अन्तिम विजय में ही हो सकती है।
>
> "उस समय यूरोपीय महाद्वीप में आर्थिक विकास की जो अवस्था थी, वह पूँजीवादी उत्पादन के निराकरण के लिए बहुत परिपक्व न थी; इतिहास ने यह उस आर्थिक क्रान्ति के द्वारा प्रमाणित किया है, जिसने 1848 से पूरे यूरोपीय महाद्वीप को अपनी लपेट में ले लिया है और जिसके फलस्वरूप बड़े पैमाने के उद्योग ने फ्रांस, आस्ट्रिया, हंगरी, पोलैण्ड और हाल में रूस में सचमुच जड़ पकड़ ली है, जबकि उसकी बदौलत जर्मनी निश्चय ही प्रथम कोटि का औद्योगिक देश बन गया है और यह सब हुआ है पूँजीवादी आधार पर, जिसमें फलतः 1848 में अभी भी विस्तरण की प्रचुर क्षमता मौजूद थी। लेकिन ठीक यही औद्योगिक क्रान्ति है जिसने वर्ग सम्बन्धों को सर्वत्र स्पष्ट किया है, मैन्युफैक्चर के युग से चले आते हुए और पूर्वी यूरोप में तो शिल्प-संघ के युग से चले आते हुए कई मध्यवर्ती रूपों को मिटा दिया है, असली पूँजीपति वर्ग को और असली, बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों में काम करने वाले सर्वहारा को जन्म दिया है और उन्हें खींचकर सामाजिक विकास के मंच पर पहुँचा दिया है। परन्तु इसी कारण इन दो महान वर्गों का संघर्ष, जो 1848 में इंग्लैण्ड को छोड़कर केवल पेरिस में और अधिक से अधिक कतिपय बड़े औद्योगिक केन्द्रों में चलता था, पूरे यूरोप में फैल गया है और उसमें ऐसी तेज़ी आ गयी है जो 1848 में अकल्पनीय थी। उस जमाने में अलग-अलग सम्प्रदायों के कितने ही ज्ञात-अज्ञात उपदेशक थे, अपने-अपने रामबाणी नुस्खे लिये हुए; आज मार्क्स का एक ही सामान्यतः स्वीकृत स्फटिक की तरह उज्ज्वल सिद्धान्त है, जिसमें संघर्ष के चरम लक्ष्यों को तीखे रूप में सूत्रबद्ध किया गया है।"

आधुनिक उद्योग के साथ सर्वहारा वर्ग इतिहास के रंग-मंच पर प्रवेश कर चुका था, हालाँकि 1848 की क्रान्ति तक इसका पश्चिमी यूरोप में रंग-मंच पर प्रमुख भूमिका में आना बाक़ी था। दूसरी तरफ़ "अलग-अलग सम्प्रदायों के

(पेज 14 पर जारी)

क्रान्तिकारी सर्वहारा को अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाना होगा!

(पेज 12 से आगे)

अपनाया और 1883 में स्विट्ज़रलैंड में पहले रूसी मार्क्सवादी संगठन- 'श्रम-मुक्ति' दल (The Emancipation of Labour group) की स्थापना की। इस ग्रुप ने रूस में मार्क्सवाद के प्रचार में काफ़ी मदद पहुँचायी और साथ ही नरोदवाद की सैद्धान्तिक ज़मीन को करारी चोट दी जो कि रूस में मार्क्सवाद के प्रसार और सामाजिक-जनवादी आन्दोलन के विकास में मुख्य विचारधारात्मक बाधा थी। 1883 और 1885 में प्लेखानोव ने रूसी सामाजिक-जनवादियों के कार्यक्रम के दो मसविदे तैयार किये जिसे 'श्रम-मुक्ति' दल ने प्रकाशित किया। यह रूस में सामाजिक-जनवादी पार्टी की स्थापना की दिशा में एक महत्वपूर्ण क़दम था। 'श्रम-मुक्ति' दल ने अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के साथ भी सम्पर्क क़ायम किये और 1889 में दूसरे इण्टरनेशनल की पहली कांग्रेस से लेकर अन्य सभी कांग्रेसों में रूसी सामाजिक-जनवादी आन्दोलन का प्रतिनिधित्व किया। हालाँकि इस ग्रुप ने कई गम्भीर गलतियाँ भी कीं; मसलन इसने उदार बुर्जुआ वर्ग की भूमिका को बढ़ा-चढ़कर आँका और सर्वहारा क्रान्ति में किसानों की क्रान्तिकारी सम्भावना-सम्पन्नता को कम करके देखा। यही गलतियाँ आगे चलकर प्लेखानोव और इस ग्रुप के अन्य सदस्यों के मेन्शेविक दृष्टिकोणों के रूप में अंकुरित हुईं।

इस संक्षिप्त चर्चा के बाद वापस लौटते हैं। लेनिन पुनः इस बात पर ज़ोर देते हैं कि कोई भी क्रान्तिकारी प्रवृत्ति, जो सचमुच गम्भीरतापूर्वक लड़ना चाहती है, ऐसे मज़बूत केन्द्रीकृत सांगठनिक ढाँचे के बिना अपना काम नहीं चला सकती है, जिसके ऊपर अर्थवादी प्रश्नचिन्ह खड़े कर रहे थे। लेनिन अर्थवादी आरोपों का जवाब देते हुए कहते हैं:

> "*'नरोदनाया वोल्या'*-वादियों ने जो ग़लती की थी, वह यह नहीं थी कि वे अपने संगठन में सभी असन्तुष्ट लोगों को शामिल करने की कोशिश करते थे और इस संगठन को निरंकुशता के ख़िलाफ़ निर्णायक संघर्ष की ओर ले जाना चाहते थे। नहीं, यह तो उनकी महान ऐतिहासिक सेवा थी। **उनकी ग़लती यह थी कि वे एक ऐसे सिद्धान्त पर भरोसा करते थे, जो अपने सार-रूप में क़तई क्रान्तिकारी नहीं था, और यह नहीं जानते थे कि विकसित होते हुए पूँजीवादी समाज के अन्दर चलने वाले वर्ग संघर्ष के साथ अपने आन्दोलन को अविछिन्न रूप से कैसे जोड़ा जाये, या ऐसा करने में वे असमर्थ थे। *मार्क्सवाद को समझने में सरासर विफलता पर ही कोई यह राय बना सकता है कि मज़दूर वर्ग के स्वतःस्फूर्त जन-आन्दोलन के जन्म हो जाने के कारण हमें क्रान्तिकारियों का उतना ही अच्छा- बल्कि उससे भी अच्छा- संगठन बनाने के काम से छुटकारा मिल गया है, जितना अच्छा संगठन 'ज़ेम्ल्या इ वोल्या' ने बनाया था। इसके विपरीत यह आन्दोलन तो इस काम को हमारा कर्तव्य बना देता है, क्योंकि जब तक सर्वहारा के इस स्वतःस्फूर्त संघर्ष का नेतृत्व क्रान्तिकारियों का एक मज़बूत संगठन नहीं करेगा, यह संघर्ष सच्चा "वर्ग संघर्ष" नहीं बन सकता।"* (ज़ोर हमारा)

यानी अर्थवादी तर्क के बिलकुल विपरीत, मज़दूर आन्दोलन की बढ़ती स्वतःस्फूर्तता सचेतनता के सांगठनिक तत्व और रूप की और अधिक माँग करती है, दूसरे शब्दों में कहें तो यह बात मज़बूत हिरावल पार्टी की ज़रूरत को ही रेखांकित करती है। इसके साथ ही लेनिन स्पष्ट करते हैं कि **राजनीतिक संघर्ष को एक षड्यन्त्र तक सीमित करने का मार्क्सवादियों ने हमेशा विरोध किया है** और आगे भी ऐसा ही करते रहेंगे। लेकिन साथ ही वे इस बात को भी जोड़ते हैं कि **इसका मतलब यह नहीं है कि मार्क्सवादी एक मज़बूत क्रान्तिकारी संगठन की ज़रूरत से ही इन्कार कर दें।** मज़बूत क्रान्तिकारी संगठन को "षड्यन्त्रकारी" होने का पर्याय बना देना वास्तव में अर्थवादियों की इस विषय में त्रुटिपूर्ण समझदारी को ही व्यक्त करता है। दरअसल अर्थवादी सामाजिक-जनवादी लोगों द्वारा गुप्त ढाँचे वाले शक्तिशाली संगठन को खड़ा करने के कार्यभार को ही "षड्यन्त्रकारी" होने की संज्ञा दे रहे थे और लेनिन का कहना था कि सामाजिक जनवादियों को ऐसे आरोपों से डरना नहीं चाहिए।

इसी चर्चा में आगे लेनिन इस बात को भी चिन्हित करते हैं कि ऐसा ऐतराज़ किया जा सकता है कि इतने शक्तिशाली, गुप्त, केन्द्रीकृत संगठन के लिए यह ग़लती करना बहुत आसान होगा कि वह समय से पहले हमला कर बैठे या फिर राजनीतिक असन्तोष और मज़दूर वर्ग की बेचैनी तथा क्रोध की उग्रता द्वारा ऐसा हमला सम्भव और ज़रूरी बनाये जाने से पहले ही बिना सोचे-समझे आन्दोलन को तेज़ कर दे। लेनिन द्वंद्वात्मक विश्लेषण की पद्धति को बखूबी लागू करते हुए कहते हैं कि मोटे तौर पर बेशक़ ऐसी सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि कोई जुझारू संगठन बिना सोचे-समझे ऐसी लड़ाई शुरू कर दे जिसका अन्त ऐसी पराजय में हो, जिसे शायद किसी और परिस्थिति में टालना सम्भव होता। लेकिन साथ ही लेनिन इस बात को भी जोड़ते हैं कि ऐसे प्रश्न पर हम केवल हवाई तर्क करने तक या केवल अमूर्त चिन्तन करने तक ही ख़ुद को सीमित नहीं रख सकते हैं क्योंकि वैसे तो हर लड़ाई में ही पराजय की अमूर्त सम्भावना निहित रहती है और इस सम्भावना को कम करने का इसके सिवा और कोई तरीक़ा नहीं है कि लड़ाई के लिए संगठित रूप से तैयारी की जाये। लेनिन लिखते हैं:

> "लेकिन यदि हम रूस में इस समय व्याप्त ठोस परिस्थितियों पर विचार करें, तो हम सकारात्मक नतीजे पर पहुँचने के लिए मजबूर होंगे कि **एक मज़बूत क्रान्तिकारी संगठन ठीक इसलिए नितान्त आवश्यक है कि वह आन्दोलन में दृढ़ता पैदा कर सके और उसे बिना सोचे-समझे हमला कर बैठने की सम्भावना से बचा सके।"** (ज़ोर हमारा)

लेनिन कहते हैं कि रूस में वर्तमान समय की विशेषता ही यह है कि इस प्रकार का कोई संगठन मौजूद नहीं है और क्रान्तिकारी आन्दोलन तेज़ी से और स्वतःस्फूर्त ढंग से आगे बढ़ रहा है और ठीक इसलिए दो विपरीत प्रवृत्तियाँ सर उठा रही हैं: "अर्थात एक ओर, बिलकुल बेतुका "अर्थवाद" और नरमी के उपदेश हैं और दूसरी ओर, उतने ही बेतुके "उत्तेजनात्मक आतंकवादी कार्य" हैं"। लेनिन बताते हैं कि इस समय आन्दोलन इन दोनों प्रकार की अतियों का शिकार हैं। यह दोनों ही छोर वास्तव में एक दूसरे के पूरक हैं यानी कि एक तरफ़ दक्षिणपन्थी अर्थवाद का छोर और दूसरी तरफ़ "वामपन्थी" दुस्साहसवाद का छोर। भारत का क्रान्तिकारी आन्दोलन भी इन दोनों प्रकार की अतियों का शिकार रहा है और आज भी है।

लेनिन के अनुसार "मालिकों तथा सरकार के ख़िलाफ़ आर्थिक संघर्ष" तक आन्दोलन को सीमित रखने से क्रान्तिकारियों को सन्तोष कभी नहीं हो सकता और सही कार्यदिशा के अभाव में इस प्रकार के परस्पर विरोधी चरमपन्थी दृष्टिकोणों का कहीं-कहीं दिखाई पड़ना अवश्यम्भावी होता है। अर्थवादी तर्क पर चोट करते हुए लेनिन एक बार फिर इस ज़रूरी सबक़ को रेखांकित करते हैं कि बिना सोचे-समझे हमला कर बैठने से आन्दोलन की हिफ़ाज़त और सफलता की आशा रखने वाले हमलों की तैयारियाँ केवल **एक ऐसा केन्द्रीकृत और जुझारू संगठन ही कर सकता है, जो दृढ़ता के साथ सामाजिक-जनवादी/कम्युनिस्ट नीति पर चलता हो और जो समस्त क्रान्तिकारी आंकाक्षाओं को सन्तुष्ट करता हो।**

इसके आगे की चर्चा अगले अंक में जारी रहेगी।

कम्युनिस्ट लीग का गठन कैसे हुआ?

(पेज 13 से आगे)

कितने ही ज्ञात-अज्ञात उपदेशक" और उनके "अपने-अपने रामबाणी नुस्खे" यानी काल्पनिक समाजवाद की कई धाराएँ मज़दूरों के बीच मौजूद थी। केवल उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में इतिहास ने एक तरफ़ सर्वहारा वर्ग को इतिहास के रंग मंच पर प्रमुख भूमिका में ला खड़ा किया, तो दूसरी तरफ़ मार्क्सवादी विचारधारा ने मज़दूर वर्ग के उन्नत तत्वों के बीच अपना प्राधिकार जमा लिया। इस प्रक्रिया में ही सर्वहारा वर्ग के संगठन के रूप में कम्युनिस्ट पार्टी की अवधारणा जन्मी जिसका पहला रूप कम्युनिस्ट लीग थी।

कम्युनिस्ट लीग के इतिहास को समझने से पहले हम पश्चिमी यूरोप में मज़दूर वर्ग के उद्भव और विकास तथा समाजवाद की सिद्धान्तिकी पर एक निगाह डाल लेते हैं। फ्रांसीसी क्रान्ति और 1848 के कालखण्ड में पश्चिम यूरोप के सभी देश औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव में बदले। हालाँकि छोटे पैमाने के उत्पादन का बड़े पैमाने के उत्पादन द्वारा विस्थापन इंग्लैण्ड की तुलना में पूरे महाद्वीप पर सापेक्षिक तौर पर काफ़ी कम हुआ था। स्वचालित मशीनरी एक-एक कर हर उद्योग में प्रवेश कर रही थी। मैनचेस्टर, लंकाशायर, यॉर्कशायर, लिवरपूल, लन्दन, पेरिस और ल्योन सरीखे औद्योगिक शहर खड़े हो रहे थे। मशीनरी और बड़ी फैक्ट्रियों के उद्भव तथा पूँजीवाद के कृषि में प्रवेश के साथ हर देश में वर्ग शक्ति समीकरण बदलना शुरू हुआ। खेतों और हस्तशिल्प से खदेड़े गये छोटे उत्पादक बड़ी संख्या में सर्वहारा की कतारों में शामिल हुए। मज़दूरों की जीवन स्थिति पहले से ही बदतर थी जो ख़ासकर 1825 के आर्थिक संकट के परिणामस्वरूप और भयावह हो रही थी। स्त्रियों व बच्चों के फैक्ट्री में सस्ती उजरत पर खटने के चलते मज़दूरी में गिरावट आयी। कार्यदिवस 12-14 घण्टे था। नये औद्योगिक कस्बों में रिहायशी स्थितियाँ असहनीय थी और मज़दूरों के ज़िले टाइफ़स और हैज़ा सरीखी महामारियों से ग्रस्त थे। मज़दूर वर्ग ने इस भयावह परिस्थिति का विरोध किया। चार्टिस्ट आन्दोलन, ल्योन के औद्योगिक दंगे और सिलेसियाई मज़दूरों की हड़तालें फूट पड़ीं। 1848 से पहले मज़दूरों के संघर्ष के यही मुख्य मील के पत्थर थे। 1836 में 'लीग ऑफ़ जस्ट' संगठन भी अस्तित्व में आया जिसका आधार पश्चिमी यूरोप के औद्योगिक शहरों में फैले जर्मन प्रवासी मज़दूर थे।

'लीग ऑफ़ जस्ट' का आधार जिन मज़दूरों के बीच था वे मुख्यतः दर्ज़ी और बढ़ई थे। लेकिन ये मज़दूर आधुनिक मज़दूर न होकर कारीगर थे। उनका चरित्र टुटपुँजिया वर्ग का था। एंगेल्स लिखते हैं:

> "इसके सदस्य जब तक मज़दूर थे, तब तक वे विशेषतः कारीगर थे। यहाँ तक कि महानगरों के भीतर भी जो व्यक्ति उनका शोषण करता था, वह एक छोटा मालिक ही होता था। बड़े पूँजीपतियों के लिए हस्तशिल्प सिलाई को घरेलू उद्योग में बदलकर सिलाई के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर शोषण, जिसे आज रेडी-मेड कपड़ों के उत्पादन के रूप में जाना जाता है, लन्दन में भी उस दौर में बस शुरू ही हुआ था। जहाँ एक ओर इन कारीगरों के शोषक छोटे मालिक थे, वहीं दूसरी ओर ये सभी कारीगर इस बात के लिए आशान्वित रहते थे कि अन्ततः वे ख़ुद छोटे मालिक बन जायेंगे। इसके अतिरिक्त जर्मन कारीगरों के बीच विरासत में मिली गिल्ड धारणाएँ भी उनके बीच मौजूद थीं।"

आम तौर पर मज़दूरों के बीच काल्पनिक समाजवादियों और वाइटलिंग के विचारों का बोलबाला था। वाइटलिंग खुद दर्ज़ी था और ईसाइयत से भी प्रभावित था। वह कम्युनिज़्म और बाइबिल के उपदेशों को मिलाकर एक अलग क़िस्म के "कम्युनिज़्म" की वक़ालत कर रहा था। दूसरी तरफ़ कई मज़दूरों में 'सच्चे समाजवाद' का भी प्रभाव मौजूद था जिसका नारा था कि सभी इन्सान भाई हैं और प्रेम से इस दुनिया को बदला जा सकता है। इन विचारों का सम्बन्ध उन वर्ग स्थितियों और उस वैचारिक सामग्री से था जो उस काल के विचारकों के समक्ष उपलब्ध थी। छोटे उत्पादक व हस्तशिल्पी बर्बाद हो रहे थे और सर्वहारा वर्ग शिशु अवस्था में ही था और उसकी सैद्धान्तिक अवधारणाएँ भी आर्थिक विकास के अनुसार ही फ़िलहाल शिशुवत थीं। प्रबोधन और फ्रांसिसी क्रान्ति के नारों को ही आगे बढ़ाते हुए ओवन, सेंट सिमों और फूरिये सरीखे लोगों ने काल्पनिक समाजवाद की अवधारणा रखी। उनके अनुसार समाजवाद राजनीतिक वर्ग संघर्ष के ज़रिये हासिल नहीं किया जाना था बल्कि शासक वर्ग के समक्ष उपदेश देकर किया जाना था। मज़दूरों के जिस प्रकार के संगठन मौजूद थे वे अधिकतर तख़्तापलट के संगठन थे। यही हो भी सकता था। ये संगठन नेतृत्व की राजनीतिक परिवर्तन की अवधारणा के अनुरूप थे। ब्लांकी ने पहली बार गुप्त संगठन के ढाँचे को सैन्य अनुशासन पर कसने की वक़ालत की और मज़दूर संगठनों के यूनियन सरीखे चरित्र की जगह एक गुप्त ढाँचे को पेश किया। लेकिन इस प्रकार के संगठन मज़दूर वर्ग और आम जन मानस में प्रचार पर ख़ास ज़ोर नहीं देते थे। यह इस कारण से ही था कि उनके बीच राजनीतिक वर्ग संघर्ष, सर्वहारा वर्ग की हिरावल भूमिका, राज्यसत्ता और क्रान्ति की ऐतिहासिक भौतिकवादी समझदारी का अभाव था। इनके लिए नयी सामाजिक व्यवस्था एक ऐसी आदर्श व्यवस्था थी जिसे तख़्तापलट कर हासिल किया जा सकता था। इस तरह इन संगठनों का प्रचार भी तख़्तापलट के ही मातहत होता था। 'लीग ऑफ़ जस्ट' का भी उद्भव इस प्रकार के एक संगठन से हुआ। एंगेल्स बताते हैं:

> "1836 में गुप्त जनवादी-गणतान्त्रिक आउटलॉज़ लीग के सर्वोच्च उपांग, मुख्य रूप से सर्वहारा तत्व, जो 1834 में पेरिस शहर में जर्मन रिफ्यूजियों के द्वारा बनाया गया था, वह टूट गया और एक नये गुप्त ढाँचे 'लीग ऑफ़ द जस्ट' का निर्माण हुआ। पुरानी लीग, जिसमें जैकोबस वेनेडी जैसे ज़्यादातर तत्व बचे थे जो पहले से ही इस राह पर डगमगा रहे थे, उन्होंने जल्द ही क़दम पीछे हटा लिये। 1840 में पुलिस द्वारा जर्मनी के कुछ हिस्सों पर धावा बोलने के बाद पुरानी लीग की छाया भी बमुश्किल ही बची। वहीं इसके विपरीत नयी लीग सापेक्षतः काफ़ी तेज़ी से उभर कर आयी। मूल रूप से यह बाबूविज़्म सरीखा फ्रांसीसी कम्युनिज़्म का जर्मन आवरण था, जो इसी दौर में पेरिस में उभर रहा था। इस दौर में "समानता" के आवश्यक नतीजे के तौर पर कम्युनिटी ऑफ़ गुड्स की माँग की गयी। जर्मन गुप्त संगठन के उद्देश्य पेरिस के गुप्त संगठनों से कुछ अलग नहीं थे, जैसे: आधा प्रचार संघ, आधा षड्यन्त्र; पेरिस हमेशा से ही क्रान्तिकारी कार्रवाइयों का केन्द्र बिन्दु माना जाता था, यद्दपि जर्मनी के राज्य विध्वंस की कार्रवाइयों को भी नकारा नहीं जा सकता। लेकिन चूँकि पेरिस एक निर्णायक युद्धस्थल था, उस दौर में लीग फ्रांसीसी गुप्त संगठनों की जर्मन शाखा से अधिक कुछ भी नहीं था, ख़ास तौर पर ब्लांकि और बार्ब्स के नेतृत्व का संगठन सोसाइटी ऑफ़ सीजंस, जिसके साथ जर्मन संगठनों के अच्छे सम्बन्ध थे। फ्रांसीसी लोगों ने 12 मई, 1839 को, कार्रवाई को अंजाम दिया, जिसमें लीग के एक हिस्से ने आकर उनका साथ दिया, और जो अन्ततः पराजय का शिकार हुआ।"

इस तरह 'लीग ऑफ़ जस्ट' का उद्भव हुआ। 'लीग ऑफ़ जस्ट' अपना प्रचार शैक्षणिक संघ में करती थी या जहाँ परिस्थिति इसकी इजाज़त न दे वहाँ खेलकूद क्लब, संगीत टोली आदि के बीच करती थी। जन संगठन और पार्टी संगठन के तालमेल का पहला लेकिन अव्यवस्थित और बिखरा हुआ प्रयोग भी 'लीग ऑफ़ जस्ट' के क्रियाकलाप में देखा जा सकता है। एंगेल्स बताते हैं:

> "लन्दन में स्विट्ज़रलैण्ड की तरह एक हद तक संगठन और सभा की आज़ादी थी। 7 फ़रवरी, 1840 की शुरुआत में क़ानूनी तौर पर मौजूदा कार्यरत जर्मन शैक्षणिक संघ का गठन हुआ था। इस संघ ने लीग के लिए भर्ती की ज़मीन तैयार की, और चूँकि हमेशा की तरह ही संघ के सबसे सक्रिय और बौद्धिक तौर पर बेहतर सदस्य कम्युनिस्ट थे, तो ज़ाहिरा तौर पर लीग के नेतृत्वकारी भूमिका उनके हाथों में थीं। लन्दन में इस लीग में बहुत कम वक्त में ही कई समुदाय साथ आने लगे, तब उन्हें वहाँ लॉज कहा जाता था। यही स्पष्ट रणनीति स्विट्ज़रलैण्ड और अन्य जगहों पर अपनायी जाने लगी। जहाँ पर इस प्रकार के मज़दूर संघ की स्थापना की जा सकती थी, वहाँ इस रूप में ही इसे इस्तेमाल किया गया। जहाँ इसपर क़ानूनी तौर पर रोक थी, वहाँ लोग कोरल सोसायटी, एथलेटिक क्लब इत्यादि के नाम पर शामिल होते थे। उन सदस्यों द्वारा बड़े स्तर पर सम्पर्कों को बनाये रखा गया, जो लगातार इधर-उधर आना जाना करते थे, ज़रूरत पड़ने पर वे दूत के रूप में भी काम कर रहे थे। दोनों ही मामलों में लीग को उन सरकारों की चतुराई की वजह से एक जीवन्त सहयोग मिला, जिसने निर्वासन का सहारा लेकर, किसी भी आपत्तिपूर्ण कार्यकर्ता को बदल दिया और दस में से नौ मामलों में वह लीग का सदस्य बनकर एक दूत बन गया।"

मार्क्स-एंगेल्स ने 1846 से मज़दूर संगठनों तथा लीग में मौजूद विजातीय प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ व्यवस्थित संघर्ष छेड़ दिया। इस दौरान उन्होंने 'कम्युनिस्ट कॉरेस्पोंडेंस कमिटी' का गठन किया जो लीग व अन्य मज़दूर संगठनों व कार्यकर्ताओं के बीच मार्क्स-एंगेल्स के विचारों का प्रचार कर रही थी। रिआज़ोनोव बताते हैं कि मार्क्स-एंगेल्स इस कमिटी को व्यवस्थित तौर पर चला रहे थे और लीग व मज़दूर संगठनों के साथ उनके बेहद घनिष्ठ सम्बन्ध थे। वाइटलिंग, प्रुधों से लेकर अन्य विजातीय प्रवृत्तियों के विरुद्ध मार्क्स-एंगेल्स के कुशल नेतृत्व में इस कमिटी ने विचारधारात्मक संघर्ष चलाया और 'लीग ऑफ़ जस्ट' को 'कम्युनिस्ट लीग' बनाने में भूमिका निभायी। मार्क्स और एंगेल्स 'लीग ऑफ़ जस्ट' से औपचारिक तौर पर 1847 में जुड़े और उसे एक कम्युनिस्ट संगठन में तब्दील कर दिया। इस संगठन की नियमावली में एक केन्द्रीकृत कमिटी, जिसके मातहत कई चक्रों और हर चक्र के मातहत दस से बीस कम्युनिटी का प्रावधान था। कम्युनिटी, चक्र, नेतृत्वकारी चक्र, केन्द्रीय अथॉरिटी और कांग्रेस में लीग संगठित थी। हालाँकि अभी यह लेनिन के "जनवादी केन्द्रीयता" के सिद्धान्त का सूत्रीकरण नहीं था। लीग में शामिल होने के लिए लीग के विचारों को स्वीकारना होता था हालाँकि लेनिनवादी पार्टी सदस्यता की अवधारणा अभी मौजूद नहीं थी। भ्रूण रूप में ज़रूर कम्युनिस्ट पार्टी के संगठन और ढाँचे के तत्व मौजूद थे परन्तु उनका सैद्धान्तिकरण नहीं था, यह लेनिन के दौर में ही हो सकता था। यह पार्टी संगठन और उसके ढाँचे का पहला प्रयोग था जिसने लेनिनवादी पार्टी अवधारणा के लिए पूर्वपीठिका तैयार की। यह भी हमें ध्यान में रखना होगा कि जिस दौर में लीग गठित हुई वह एक गुप्त संगठन के रूप में ही गठित हो सकती थी। 'कम्युनिस्ट लीग' के कई सांगठनिक उसूल राजनीतिक परिस्थितियों की वजह से उपजे थे। यही कारण है कि एंगेल्स 'कम्युनिस्ट लीग' को "प्रॉपगैण्डा करने वाला एक गुप्त संगठन" कहते हैं। एंगेल्स कहते हैं:

> "फ़रवरी क्रान्ति के दौरान जर्मन "कम्युनिस्ट पार्टी" (जैसा कि हमने इसे नाम दिया है) का 'कम्युनिस्ट लीग' के रूप में एक छोटा कोर मौजूद था, जो कि प्रॉपगैण्डा करने वाले एक गुप्त संगठन के रूप में बना था। यह लीग गुप्त केवल इसलिए था क्योंकि उस वक़्त जर्मनी में किसी भी क़िस्म के संघ बनाने या सभा करने की आज़ादी नहीं थी। उन विदेशी मज़दूर संगठनों के अलावा, जहाँ से भर्तियाँ हो रही थीं, केवल जर्मनी में ही 30 समुदाय या सेक्शन मौजूद थे। साथ ही कुछ जगहों पर बिखरे-बिखरे तौर पर संगठन के कई सदस्य भी मौजूद थे। हालाँकि इस छोटी-सी जुझारू ताक़त के पास एक लीडर थे: मार्क्स, जिनके प्राधिकार को कई लोगों ने स्वीकार किया था, जो प्रथम श्रेणी के लीडर थे, और जिनकी वजह से उसूलों और रणकौशलों के कार्यक्रम के रूप में *कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र* हम तक पहुँच पाया, जिसकी प्रासंगिकता आज भी कम नहीं हुई है।"

वह सामान्यीकरण जो आज भी कम्युनिस्ट पार्टी के लिए प्रासंगिक है, वह मार्क्स-एंगेल्स के इन शब्दों में अभिव्यक्त किया जा सकता है:

"कम्युनिस्ट दूसरी मज़दूर पार्टियों के विरुद्ध अपनी कोई अलग पार्टी नहीं बनाते। समग्र रूप में सर्वहारा के हितों के अलावा और पृथक उनके कोई हित नहीं हैं।

"वे सर्वहारा आन्दोलन को ख़ास नमूने पर ढालने या विशेष रूप प्रदान करने के लिए अपने कोई संकीर्ण सिद्धान्त नहीं स्थापित करते।

"कम्युनिस्ट दूसरी मज़दूर पार्टियों से सिर्फ़ इस लिहाज़ से भिन्न हैं 1. विभिन्न देशों के सर्वहाराओं के राष्ट्रीय संघर्षों में वे राष्ट्रीयता से सर्वथा निरपेक्षतः समस्त सर्वहारा के सामान्य हितों को इंगित करते और सामने लाते हैं। 2. बुर्जुआ वर्ग के ख़िलाफ़ मज़दूर वर्ग के संघर्ष को जिन विभिन्न मंज़िलों से होकर गुज़रता होता है, उनमें वे हमेशा और हर कहीं समूचे तौर पर आन्दोलन के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

"अतः एक ओर, व्यावहारिक दृष्टि से, कम्युनिस्ट हर देश की मज़दूर पार्टियों के सबसे उन्नत और कृतसंकल्प हिस्से होते हैं, ऐसे हिस्से जो औरों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं; दूसरी ओर, सैद्धान्तिक दृष्टि से, सर्वहारा वर्ग के विशाल जन-समुदाय की अपेक्षा वे इस अर्थ में उन्नत हैं कि वे सर्वहारा आन्दोलन के आगे बढ़ने के रास्ते की, उसके हालात और सामान्य अन्तिम नतीजों की सुस्पष्ट समझ रखते हैं।"

यह कम्युनिस्ट पार्टी का सर्वहारा वर्ग के हिरावल के रूप में सैद्धान्तिकीकरण है। एंगेल्स बताते हैं कि "1847 के दौरान 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' में कम्युनिस्ट लीग के बैनर के तले लाये गये सैद्धान्तिक उसूलों ने आज के दौर में यूरोप और अमेरिका दोनों के ही पूरे सर्वहारा वर्ग के आन्दोलन को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मज़बूती देने का काम किया है।" घोषणापत्र ने सभी भ्रान्तिपूर्ण 'काल्पनिक समाजवादी' शिक्षाओं को हटाकर इस बात को स्थापित कर दिया कि इतिहास की चालक शक्ति वर्ग-संघर्ष है और वर्ग-संघर्ष की जड़ें समाज की आर्थिक बुनियाद में निहित हैं। कम्युनिस्ट घोषणापत्र सर्वहारा क्रान्ति के उद्देश्यों और लक्ष्यों का सर्वप्रथम और संक्षिप्ततम सूत्रीकरण भी है। कोलोन मुक़दमे के बाद 'कम्युनिस्ट लीग' को भंग कर दिया गया। यह यूरोप के 1848-52 के क्रान्तिकारी दौर का भी समापन था। अगले अंक में हम प्रथम इण्टरनेशनल के प्रयोग तथा यूरोप की पहली सामाजिक जनवादी पार्टियों के उद्भव पर बातचीत करेंगे।

चीले के महाकवि **पाब्लो नेरुदा** की कविता

मैं दण्ड की माँग करता हूँ

अपने शहीदों के नाम पर
उन लोगों के लिए
मैं दण्ड की माँग करता हूँ
जिन्होंने हमारी पितृभूमि को
रक्तप्लावित कर दिया है
उन लोगों के लिए
मैं दण्ड की माँग करता हूँ
जिनके निर्देश पर
यह अन्याय, यह ख़ून हुआ
उस विश्वासघाती के लिए
मैं दण्ड की माँग करता हूँ
जो इन शवों पर खड़े होने की हिम्मत रखता है
उसके लिए मेरी माँग है
उसे दण्ड दो, उसे दण्ड दो
जिन लोगों ने हत्यारों को माफ़ कर दिया है
उनके लिए मैं दण्ड की माँग करता हूँ
मैं चारों ओर हाथ मलते
घूमता नहीं रह सकता
मैं उन्हें भूल नहीं सकता
मैं उनके ख़ून से सने हाथों को
छू नहीं सकता
मैं उनके लिए दण्ड चाहता हूँ
मैं नहीं चाहता कि उन्हें यहाँ-वहाँ
राजदूत बनाकर भेज दिया जाये
मैं यह भी नहीं चाहता
कि वे लोग यहीं छुपे रहें
मैं चाहता हूँ
उन पर मुक़दमा चले
यहीं, इस खुले आसमान के नीचे
ठीक यहीं
मैं उन्हें दण्डित होते देखना चाहता हूँ

•

मैं उन शहीदों से बात करना चाहता हूँ
लगता है वे लोग यहीं हैं
मेरे भाइयो! संघर्ष जारी रहेगा
अपनी लड़ाई हम जारी रखेंगे
कल-कारख़ानों में, खेत-खलिहानों में
गली-गली में यह लड़ाई जारी रहेगी
नमक/शोरा की खदानों में
यह लड़ाई जारी रहेगी
यह लड़ाई जारी रहेगी
वृक्षहीन समतल भूमि पर
ताँबें की भट्ठियों में धधक उठेगी
लाल-हरी लपटें
सुबह-सुबह कोयले का काला धुआँ
भरता जा रहा है जिन कोठरियों में
वहीं खींची जायेगी
युद्ध की रेखा
और हमारे हृदयों में
ये झण्डे जो तुम्हारे ख़ून के गवाह हैं
जब तक इनकी संख्या
कई गुना बढ़ नहीं जाती
सिर्फ़ लहराते ही नहीं रहें
और तेजी से फड़फड़ाने लगें
अक्षय वसन्त के इन्तज़ार में
लाखों-हज़ार पत्तों की तरह

•

हज़ारों साल तक
इस सड़क पर बिछे पत्थरों से
तुम्हारे कदमों की आवाज़
और आहटें आती रहेंगी
पत्थरों पर पड़े तुम्हारे ख़ून के दाग
अब किसी तरह मिटाये नहीं जा सकेंगे
हज़ारों कण्ठों की अजस्र ध्वनि
इस सहमे हुए मौन को तोड़ देगी
तुम्हारी मौत को भूला नहीं जा सकेगा कभी भी
घण्टे की गूँजती हुई आवाज़
उसकी याद दिलाती रहेगी
बरसात में दीवारों की तरह नोनी पकड़ लेगी
नोनी लगी टूटी-फूटी दीवारों के
काँप उठने के बावजूद
शहीदों तुम्हारे नामों की ज्वाला
कोई बुझा नहीं पायेगा
अत्याचारियों के हज़ारों हाथ
जीवन्त आशाओं का गला नहीं दबा सकते
वह दिन आ रहा है
हम सारी दुनिया के लोग एकजुट हैं
हम अनेक लोग
आगे बढ़ते जा रहे हैं
सहने के ये आख़िरी दिन हैं
बहुत भारी लड़ाई लड़कर
फ़ैसले का वह एक दिन छीन लिया गया है
और तुम
ओ मेरे वंचित भाइयो!
ख़ामोशी से निकलकर तुम्हारी आवाज़ उठेगी
आज़ादी की असंख्य आवाज़ों से मिलने
मनुष्य की आशाएँ और आकांक्षाएँ
दिग्विजयी विद्युत्-छटाओं से मिलने
निकल पड़ी हैं

('सड़कों, चौराहों पर मौत और लाशें' कविता का एक अंश)

लोकसभा चुनावों में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) के पाँच प्रत्याशियों का प्रदर्शन

(पेज 7 से आगे)

है। वहीं नकारात्मक के तौर पर जो बात उभर कर आयी उसके पीछे एक छोटी पार्टी होने के वस्तुगत कारण अधिक थे जिस कारण हम जनता के व्यापक हिस्से में प्रचार नहीं कर पाये। दूसरा, दिल्ली में रह रही मज़दूर आबादी के एक बड़े हिस्से का वोटर कार्ड यहाँ नहीं है जिस कारण वे वोट नहीं डाल सकते हैं। आगे पार्टी की तरफ़ से इस बाबत मतदाता कार्ड कैम्प भी लगवाये जायेंगे। उन इलाक़ों में प्रचार को अधिक सकारात्मक रुख के साथ लोगों ने सुना और वोट की संख्या भी ठीक रही जहाँ जनता के बीच हमारे संस्थाबद्ध सुधार कार्य चल रहे हैं। पार्टी को इस ओर भी विशेष ज़ोर देना होगा, यह कार्य फ़ासीवाद के विरुद्ध हमारी रणनीति का भी अहम हिस्सा है।

आगे का रास्ता क्या होगा

RWPI मज़दूरों का अपना स्वतन्त्र क्रान्तिकारी विकल्प है। अभी यह अपनी पहचान को स्थापित करने की ही मंज़िल में है। अभी व्यापक मेहनतकश जनसमुदाय तक इस नाम को पहुँचने और स्थापित होने में समय लगेगा, जो कि लाज़िमी है, क्योंकि यह किसी पूँजीवादी घराने, पूँजीवादी चुनावी ट्रस्टों, एनजीओ, फ़ण्डिंग एजेंसियों आदि के वित्तपोषण पर नहीं टिकी है। पूरा चुनाव अभियान RWPI ने जनता के बीच से और प्रगतिशील व्यक्तियों के बीच से जुटाये सहयोग से चलाया और समझा जा सकता है कि लोकसभा के विशाल निर्वाचन मण्डल को पूरी तरह ऐसे प्रचार से समेट पाना भी मुमकिन नहीं होता। कारपोरेट मीडिया का समर्थन आपके पास नहीं होता जिससे कि उस आबादी तक भी आपकी बात पहुँच सके, जिस तक आप स्वयं भौतिक रूप में नहीं पहुँच सकते। इन सभी सीमाओं के बावजूद RWPI को अपने प्रचार अभियान और कई लोकसभा सीटों पर वोटों के रूप में भी जनता का अच्छा समर्थन प्राप्त हुआ है। आने वाले समय में इस प्रदर्शन को पार्टी और बेहतर बनायेगी और पूँजीवादी संसद में मज़दूर वर्ग के प्रतिनिधि और स्वर के रूप में पहुँचेने का प्रयास करेगी। आने वाले समय में RWPI आम मेहनतकश जनता के सभी मुद्दों पर उन्हें गोलबन्द और संगठित करना जारी रखेगी और उसके राजनीतिक विकल्प के तौर पर खड़ी होगी।

जिन मुद्दों को लेकर हमने संसदीय चुनाव में हस्तक्षेप किया था उन मुद्दों को लेकर ही हम फिर से जनता के बीच निरन्तर मौजूद रहेंगे। रोज़गार की गारण्टी, ठेका प्रथा का ख़ात्मा, न्यूनतम वेतन 30000 रुपये, नि:शुल्क और समान शिक्षा, नि:शुल्क स्वास्थ्य सेवा, पक्की नालियाँ, साफ़ पीने का पानी व अन्य तात्कालिक माँगों को मौजूदा सरकार के समक्ष रखने के लिए पार्टी द्वारा हर इलाक़े में मोहल्ला सभाओं का आयोजन किया जायेगा और इन सवालों को लेकर आन्दोलन शुरू किया जायेगा। RWPI सभी मज़दूर साथियों का आह्वान करती है कि वे पार्टी से जुड़ें और अन्य इंसाफ़पसन्द लोगों को भी जोड़ें। पार्टी समाजवादी कार्यक्रम की दीर्घकालिक माँगों को भी जनता में लगातार प्रचारित-प्रसारित करती रहेगी। आगे भी आरडब्ल्यूपीआई पूँजीवादी चुनावों में एक स्वतन्त्र सर्वहारा पक्ष के निर्माण के लिए काम जारी रखेगी और इसके ज़रिये जनता के बीच एक नये विकल्प के निर्माण, समाजवादी कार्यक्रम के प्रचार और पूँजीवादी व्यवस्था को बेनक़ाब करने का काम करती रहेगी। अन्त में, हम आरडब्ल्यूपीआई को दिये गये समर्थन के लिए मेहनतकश जनता, तमाम क्रान्तिकारी यूनियनों, जनसंगठनों व संस्थाओं को क्रान्तिकारी सलाम पेश करते हैं और सर्वहारा सत्ता व समाजवादी व्यवस्था के लिए संघर्ष को आगे बढ़ाने के अपने प्रयासों को जारी रखने की प्रतिबद्धता ज़ाहिर करते हैं।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

उत्तराखण्ड सहित कई राज्यों में जंगलों में आग की बढ़ती घटनाएँ

यह जलवायु परिवर्तन के मद्देनज़र कुदरत की चेतावनी है!

● आनन्द

पिछले कुछ सालों से देश के कई हिस्सों में गर्मियों में जंगलों में आग की घटनाओं में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। इस साल भी जंगल में आग की घटनाओं ने पुराने सभी कीर्तिमान ध्वस्त कर ज़बर्दस्त तबाही मचायी। सबसे भयंकर हालात उत्तराखण्ड में देखने में आये जहाँ इस साल 10 जून तक जंगलों में आग की 2,154 घटनाएँ सामने आयीं। उत्तराखण्ड के अलावा हिमाचल प्रदेश, जम्मू व कश्मीर, ओडिशा, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़ व उत्तर-पूर्व के कुछ क्षेत्रों में भी जंगल की आग की परिघटना ख़ौफ़नाक रूप अख़्तियार कर रही है। जंगल में आग की इन घटनाओं से जान-माल, जैव-विविधता और प्राकृतिक संसाधनों की ज़बर्दस्त तबाही होती है। उत्तराखण्ड के जंगलों में आग से इस साल कम से कम 5 लोगों की मृत्यु की ख़बरें आयीं और अनगिनत पशु-पक्षी जलकर राख हो गये। अकेले उत्तराखण्ड में 1500 हेक्टेयर से ज़्यादा जंगल सुपुर्द-ए-ख़ाक हो गये। इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश में क़रीब 1000 हेक्टेयर जंगल आग में स्वाहा हो गये। जंगलों में आग की ये घटनाएँ जलवायु परिवर्तन से सीधे तौर पर जुड़ी हुई हैं और इनके नतीजे के रूप में जलवायु परिवर्तन और पारिस्थितिकी असन्तुलन की समस्या और भी भयावह हो रही है।

पिछली 13 जून को अल्मोड़ा के निकट प्रख्यात बिनसर के जंगल में लगी आग में चार वनकर्मी आग बुझाते हुए जलकर मर गये और चार अन्य वनकर्मी 50-60 प्रतिशत तक जल गये। उत्तराखण्ड के जंगलों की आग में इस वर्ष 10 वनकर्मी जलकर मर चुके हैं। बहुत से अन्य घायल हुए हैं जिनका समुचित इलाज तक नहीं हो पाया। उत्तराखण्ड के नाज़ुक पर्यावरण को ख़तरे में डालकर पर्यटकों की रेलमपेल लगाने में मस्त भाजपा सरकार केदारनाथ में रोज़ कई फेरे हेलीकॉप्टर के लगवा रही है लेकिन जंगल की आग बुझाते हुए जले वनकर्मियों को हल्दवानी के निकटतम अस्पताल में ले जाने के लिए उसे हेलीकॉप्टर नहीं मिल पाता है। बिनसर का जंगल उत्तराखण्ड के सर्वाधिक जैव विविधता वाले वनों में शामिल है। उसके दहकने से जो नुक्सान हो रहा है उसकी न तो जल्दी भरपाई की जा सकती है और न उस नुक्सान का पूरा अनुमान लगाया जा सकताहै। लेकिन सरकार और प्रशासन राज्य में टूरिस्टों की भीड़ जुटाने में ही मस्त हैं।

अब इस बात में कोई सन्देह नहीं रह गया है कि पिछली कुछ सदियों के दौरान दुनिया के विभिन्न हिस्सों में हुए पूँजीवादी विकास के फलस्वरूप पृथ्वी पर जलवायु परिवर्तन की भयावह समस्या उठ खड़ी हुई है जिसका नतीजा पृथ्वी पर लगातार बढ़ते तापमान, सूखे और बाढ़ की बढ़ती तबाहियों के रूप में सामने आ रहा है। जलवायु परिवर्तन की वजह से पहाड़ों पर ग्लेशियर बहुत तेज़ी से पिघल रहे हैं और पहाड़ी इलाक़ो में बर्फ़बारी लगातार कम होती जा रही है। नतीजतन पहाड़ी इलाक़ों में गर्मियों में मिट्टी पहले से ज़्यादा शुष्क होती जा रही है। जाड़े के बाद पतझड़ के मौसम में जंगलों में पेड़ों से गिरी सूखी पत्तियों का अम्बार लग जाता है जो आग के ईंधन का काम करती हैं। ख़ास तौर पर चीड़ के जंगलों में आग लगने की सम्भावना ज़्यादा होती है क्योंकि चीड़ की पत्तियाँ और पेड़ बेहद ज्वलनशील होते हैं। जंगल में किसी एक जगह आग धधकने से वह बेक़ाबू होकर बहुत ही तेज़ी से आसपास के तमाम जंगली इलाक़ों तक फैल जाती है और उसे बुझाना बेहद मुश्किल हो जाता है। ख़ास तौर पर जब हवा बहुत तेज़ चलती है या आँधी-तूफ़ान आता है तो आग और भी तेज़ी से फैलती है। बारिश होने पर यह आग बुझ जाती है, लेकिन चूँकि जून से पहले मानसून के आने की सम्भावना नहीं रहती इसलिए जून से पहले जंगलों में लगी आग पर क़ाबू पाना बेहद मुश्किल होता है।

आग की शुरुआत होने का तात्कालिक कारण किसानों द्वारा पराली जलाना, ग्रामीणों द्वारा साफ़-सफ़ाई की दृष्टि से कूड़े-करकट में आग लगाना और पहाड़ी इलाक़ों में जंगलों के नज़दीक पर्यटकों द्वारा लगायी गयी आग हो सकता है या फिर कोई प्राकृतिक कारण जैसे बिजली का गिरना भी हो सकता है। ग़ौरतलब है कि पारम्परिक रूप से पहाड़ी जंगलों के आसपास रहने वाले समुदायों में सामूहिक रूप से आग पर क़ाबू पाने का प्रचलन रहा है। परन्तु पूँजीवादी विकास, खेती के संकट और पर्यावरण के विनाश की वजह से तमाम समुदाय तितर-बितर हो चुके हैं। लोग रोज़ी-रोटी की तलाश में मैदानों व शहरों की ओर पलायन करने के लिए मजबूर होते हैं। अकेले उत्तराखण्ड में 1700 से ज़्यादा गाँव ऐसे हैं जो पूरी तरह से वीरान हो चुके हैं क्योंकि वहाँ के सभी बाशिंदे पलायन कर चुके हैं। जिन गाँवों में लोग बचे हुए हैं वहाँ भी ज़्यादातर बुज़ुर्ग ही रहते हैं क्योंकि युवा रोज़ी-रोटी की तलाश में पलायन कर चुके हैं। इन हालात में सामुदायिक रूप से जंगल की आग पर क़ाबू पाना और भी मुश्किल होता जा रहा है। सरकार भाड़े पर लोगों से जंगलों में सूखी पत्तियों को हटाने का काम करवा रही है, लेकिन बेहद कम मज़दूरी मिलने की वजह से इस काम में लोगों का कोई उत्साह नहीं रहता है। उत्तराखण्ड की भाजपा सरकार ने आग की समस्या को समय पर क़ाबू करने में कोताही बरती जिसकी वजह से जंगलों की आग बेक़ाबू होती गयी। जब आग भयावह रूप लेने लगी तो सरकार ने सेना के हेलीकॉप्टरों की मदद से जंगलों में लगी आग पर पानी छिड़ककर आग बुझाने की कवायद शुरू की। इसी बीच संघ परिवार के लोगों ने हमेशा की ही तरह आपदा में अवसर तलाशते हुए सोशल मीडिया पर फ़र्जी वीडियो वायरल करवाकर यह झूठ फैलाने की भी बेशर्म कोशिश की कि जंगलों में आग मुसलमानों ने फैलायी है क्योंकि वे उत्तराखण्ड सरकार द्वारा पारित किये गये समान नागरिक संहिता क़ानून का बदला लेना चाहते हैं। ऐसे मानवद्रोही फ़ासिस्ट शासन में अगर जंगलों में आग हो, भूस्खलन हो, बाढ़ हो या पर्यावरण से सम्बन्धित अन्य समस्याएँ भयावह रूप धारण कर रही हैं तो इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं है।

आख़िरकार बारिश होने के बाद ही उत्तराखण्ड व अन्य पहाड़ी इलाक़ों में जंगलों में लगी आग बुझ पायी। अब जबकि मानसून आ चुका है, जंगलों में लगी आग पूरी तरह से बुझ चुकी है। लेकिन इसमें संतुष्ट होने की कोई बात नहीं है। हर साल गर्मियों में लगने वाली आग की यह विभीषिका कुदरत की एक चेतावनी है कि अगर जलवायु परिवर्तन व पारिस्थितिक असन्तुलन जैसी समस्याओं से समय रहते नहीं निपटा गया तो आने वाले दिनों में बेहिसाब तबाही व बरबादी होनी वाली है।

दुनिया भर में तमाम पूँजीवादी सरकारें व अन्तरराष्ट्रीय एजेन्सियाँ पर्यावरण विनाश, जलवायु परिवर्तन और पारिस्थितिक असन्तुलन पर संगोष्ठियाँ करके घड़ियाली आँसू तो बहुत बहाती हैं परन्तु वे इन समस्याओं का समाधान कर ही नहीं सकती हैं क्योंकि वे समस्या की मूल वजह पर पर्दा डालती हैं। वे हमें यह नहीं बताती हैं कि इन विभीषिकाओं के लिए दरअसल मुनाफ़ाकेन्द्रित पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली ज़िम्मेदार है। अक्सर तमाम पर्यावरणवादी भी पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं के लिए समूची मानवता को ज़िम्मेदार ठहराते हैं और पूँजीवाद को बरी कर देते हैं। लेकिन सच तो यह है कि इन समस्याओं के लिए पूँजीवादी हुक्मरान तबका ज़िम्मेदार है जिसने मुनाफ़े की अपनी अन्तहीन हवस को पूरा करने की सनक में पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व को ही ख़तरे में डाल दिया है। चाहे जंगलों में आग की घटनाएँ हों या बाढ़ व सूखे की घटनाएँ अथवा भूस्खलन और सूनामी की घटनाएँ हों, ये सभी चीख-चीख कर हमें चेतावनी दे रही हैं कि अगर हम अनियोजित व मुनाफ़ाकेन्द्रित उत्पादन प्रणाली को उखाड़कर नियोजित व लोगों की ज़रूरत पर आधारित उत्पादन प्रणाली नहीं लाते हैं यानी पूँजीवाद को उखाड़कर समाजवाद नहीं लाते हैं तो पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व ही नहीं बचेगा। केवल एक समाजवादी समाज में ही कृषि व औद्योगिक उत्पादन को योजनाबद्ध रूप से संचालित किया जा सकता है और यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि मनुष्य की उत्पादक गतिविधियाँ प्रकृति की तबाही का सबब न बनें और जलवायु परिवर्तन एवं पारिस्थितिक असन्तुलन न पैदा हो। चाहे जंगलों में लगी आग हो या पर्यावरण सम्बन्धी कोई भी समस्या हो, उसका जड़मूल समाधान केवल समाजवादी समाज में ही मुमकिन है क्योंकि समाजवाद में ही तमाम समस्याओं की तरह पर्यावरण की समस्या का समाधान भी आम बहुसंख्यक मेहनतकश वर्गों के हित में तथा सामुदायिक व सामूहिक तरीक़े से योजनाबद्ध ढंग से किया जा सकता है और विज्ञान व प्रौद्योगिकी का समस्त ज्ञान मुट्ठी भर लोगों के मुनाफ़े के लिए न होकर लोगों की ज़रूरतों को पूरा करने और पर्यावरण की समस्याओं को दूर करने के लिए किया जा सकता है। इस प्रकार पर्यावरण की समस्या सीधे तौर पर वर्ग संघर्ष से जुड़ी हुई है और उसे वर्ग संघर्ष से परे एक स्वतंत्र समस्या के रूप में देखने से हम उसके समाधान की दिशा में क़दम भी आगे नहीं बढ़ा सकते हैं। आज के दौर में अगर कोई व्यक्ति पर्यावरण विनाश से विचलित होता है और उसे रोकना चाहता है तो उसे पूँजीवाद के विकल्प के बारे में सोचना होगा और सर्वहारा वर्ग का पक्ष चुनना होगा।

अगर हमने पूँजीवाद को ख़त्म नहीं किया तो यह इस धरती को तबाह कर डालेगा!

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016